आधुनिक हिंदी का स्रोत

नया चिंतन

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

आधुनिक हिन्दी का स्रोत
नया चिन्तन

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

Adhunik Hindi Ka Sroth: Naya Chinthan

Origin and Source of Modern Hindi: New thinking

AUTHOR

Dr. V. P. Mohammed Kunju Methar

University of Kerala
Trivandrum Pin: 695 581

Published March 1986

Published by
Smt. P. A. SAUDA
Quarters No. C-7
Kariavattom, Trivandrum Pin: 695 581
(For Copies write to the Publisher)

Printed at
Sreemangalam Printers
Trivandrum
Price Rs 60/-

क्रम

प्रस्तावना

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि दक्खिनी हिन्दी खड़ीबोली का पूर्ववर्ती रूप है। १४२१ और १४३५ ई. के बीच में रचित 'मसनवी' 'कदमराव पदमराव' का भाषावैज्ञानिक अध्ययन करने से एक ओर दक्खिनी के उदय और विकास के विविध पहलुओं को समझा जा सकता है तो दूसरी ओर खड़ीबोली के प्रारम्भिक रूप को भी स्पष्ट किया जा सकता है। जैसा कि इस ग्रन्थ में डॉ. मुहम्मद कुंज मेत्तर ने व्यक्त किया है पन्द्रहवीं शती में लिखित कबीर या अब्दुल कुद्दूस गंगोही की हिन्दी कृतियों की भाषा से दक्खिनी के आदि काव्य की भाषा की तुलना की जाए तो हिन्दी की विभिन्न बोलियों का आरम्भिक स्वरूप ही नहीं वरन् खड़ीबोली के उत्तर-दक्षिण रूपों की अभिन्नता भी जानी जा सकती है।

'मसनवी कदमराव पदमराव' के अध्ययन-अनुशीलन से यह बात भी प्रकट होती है कि प्रारम्भ में हिन्दी-उर्दू का कोई भेद नहीं था। यदि दोनों में कोई फर्क दिखाई देता था तो वह लिपि तक सीमित रहा था जिसका प्रबल प्रमाण प्रस्तुत मसनवी और अन्य दक्खिनी रचनाओं से प्राप्त होता है। उत्तर और दक्खिन में व्यवहृत खड़ीबोली एक थी।

पन्द्रहवीं शती में उत्तरी और दक्खिनी हिन्दी में लिखित ग्रन्थों से यह बात सिद्ध होती है कि उस काल में हिन्दी की कोई बोली समृद्ध नहीं हो चुकी थी। डॉ. मुहम्मद कुंज मेत्तर ने प्रस्तुत अध्ययन में दक्खिनी हिन्दी के उन पहलुओं को उजागर करने का प्रयास किया है जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। उनके इस अध्ययन से दक्खिनी के आदि रूप अर्थात् आधुनिक हिन्दी के पुराने रूप की भाषागत विशिष्टताएँ स्पष्ट हुई हैं और लेन-देन की नीति को अपनाकर विकास के पथ पर बढनेवाली हिन्दी की सहज प्रवृत्ति पर प्रकाश पड़ा है।

आधुनिक हिन्दी के स्रोत को व्यक्त करनेवाली काव्य कृति 'मसनवी कदमराव पदमराव' का ऐतिहासिक महत्व भी है। यह एक ऐसा अनूठा ग्रन्थ-रत्न है जिसकी भाषा आधुनिक हिन्दी के बहुत निकट की प्रतीत होती है।

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि जिस युग में यह आख्यानक काव्य लिखा गया उस युग में उत्तर की खड़ीबोली में ऐसा कोई काव्य नहीं लिखा गया । इसमें कोई सन्देह नहीं है कि डॉ. मेत्तर ने अपने अध्ययन केलिए ऐसे विषय ही चुन लिये हैं जिनकी ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। आधुनिक हिन्दी का आदि काव्य, आधुनिक हिन्दी का आदिकालीन गद्य, केरल की पुरानी हिन्दी, हिन्दी और मॉप्पिला मलयालम ऐसे विषय हैं जिन पर हिन्दी के विद्वानों ने अब तक विचार नहीं किया है। आधुनिक हिन्दी के सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ के विवेचन का श्रेय भी डॉ. मेत्तर को मिला है।

चूंकि हिन्दी के विद्वानों को दक्षिण में विकसित खड़ीबोली के प्रारम्भिक रूप दक्खिनी के विषय में पूरी जानकारी उपलब्ध नहीं रही, अतः हिन्दी के प्रारम्भिक स्वरूप के सम्बन्ध में वास्तविक धारणा उपलब्ध नहीं हो सकी। यह भी कारण है कि दक्षिण की ओर उनकी दृष्टि नहीं गई और खास करके फारसी लिपि में लिखे रहने के कारण दक्षिण में विकसित हिन्दी के प्रति एक उपेक्षा भावना रही है। शायद इसी पुर्वाग्रह के कारण यह उपेक्षा भावना बनी रही होगी कि दक्षिण में विकसित हिन्दी उर्दू के अधिक निकट है। हिन्दी के विद्वानों को यह जानकर आश्चर्य ही नहीं झटका भी होगा कि दक्खिनी हिन्दी वर्तमान खड़ीबोली हिन्दी से अधिक निकट है, उसमें अधिकांश प्रतिशत शब्द संस्कृत के हैं। अतः भले ही दक्षिण में विकसित दक्खिनी हिन्दी को वर्तमान खड़ीबोली के प्रारम्कि स्वरूप मानने में हमारे हिन्दी विद्वानों को थोड़ी सी कठिनाई होगी परंतु वास्तविका अपनी जगह पर है ही।

डॉ. मुहम्मद कुंज मेत्तर गत पन्द्रह वर्षों से दक्खिनी हिन्दी के अध्ययन-अनुसन्धान में लगे हुए हैं। दक्खिनी के उपेक्षित पहलुओं पर प्रकाश डालते हुए उनके अनेक शोधपरक निबन्ध हिन्दी, मलयालम और अंग्रेजी की प्रमुख पत्र-पत्रिकाओं में आ चुके हैं। 'दक्खिनी हिन्दी का सूफ़ी साहित्य' पर शोध करके उन्होंने पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की है। डॉ. मेत्तर बड़े ही प्रतिभावान, साहित्य के और शोध के प्रति समर्पित व्यक्ति हैं जिन्होंने अथक परिश्रम से दक्खिनी हिन्दी के खोये हुए महान साहित्य को प्रकाश में लाकर हिन्दी को समृद्ध किया है। इनका वर्तमान ग्रन्थ मौलिक शोध के क्षेत्र में एक महान् उपलब्धि है जो इस क्षेत्र में शोध

करनेवालों को नई प्रेरणा प्रदान करेगा। मुझे आशा ही नहीं दृढ़ विश्वास है कि हिन्दी क्षेत्र इस ग्रन्थ का स्वागत करेगा। डॉ. मेत्तर से बड़ी आशाएँ हैं कि वे आगे भी हिन्दी की सशक्त कड़ी दक्खिनी के अंधकार में पड़े पहलुओं को उजागर करने की चेष्टा करेंगे। उन्हें मैं अपना हार्दिक साधुवाद देता हूँ और इस ग्रन्थ केलिए बधाई देता हूँ।

नई दिल्ली,
२१-३-१९८६

प्रो. मलिक मुहम्मद
अध्यक्ष
वैज्ञानिक एवं तकनीकी शब्दावली आयोग
शिक्षा और समाज कल्याण मंत्रालय
भारत सरकार
नई दिल्ली

कृतज्ञता

दक्खिनी हिन्दी के अध्ययन-अनुसन्धान की प्रेरणा देनेवाले श्रद्धेय गुरुवर प्रोफेसर मलिक मुहम्मद जी हैं । आप ने प्रस्तुत ग्रन्थ केलिए 'प्रस्तावना' लिखकर मुझे अनुगृहीत किया है । अत: उनके प्रति मैं चिरऋणी हूँ ।

अंजुमन तरक्की ए उर्दू, कराच्ची, पाकिस्तान ने डॉ. जमील जालिबी द्वारा सम्पादित 'मसनवी कदमराव पदमराव' की मूलपाठ सहित प्रति प्रदान करके मेरा बड़ा उपकार किया । अत: उनके प्रति मैं अपनी हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ ।

पारिवारिक कार्यों से बेफिक्र रहकर अध्ययन-अनुसन्धान में रत रहने का सुअवसर प्रदान करनेवाली मेरी प्रिय धर्मपत्नी श्रीमती सौदा के स्नेह और सहयोग से ही यह ग्रन्थ प्रस्तुत कर सका हूँ । उनके प्रति जो ऋण है उससे उऋण होना असंभव ही है ।

प्रो. कृष्णन नम्पूतिरि ने इस ग्रन्थ की हस्तलिखित प्रति पढ़ने का कष्ट किया जिसके लिए उनके प्रति आभार प्रदर्शित करता हूँ । श्री. पी. सनलकुमार और श्री पी. ए. परीद के प्रति अपना आभार व्यक्त करता हूँ, जिन्होंने इस ग्रन्थ को प्रकाशित करने का प्रोत्साहन दिया है। अंत में पूज्य पिताजी श्री. वी. एम. परीदकुंज मेत्तर के प्रति श्रद्धापूर्ण आभार व्यक्त करता हूँ जिनका आशीर्वाद और अनुग्रह मेरा सम्बल रहा है ।

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

१. आधुनिक हिन्दी की विकास-परम्परा

आधुनिक हिन्दी का विकास खड़ीबोली से हुआ है और खड़ीबोली का जितना विकास दक्षिण के हिन्दीतर क्षेत्र में हुआ उतना उत्तर के हिन्दी क्षेत्र में नहीं हुआ। किन्तु यह दुर्भाग्य ही कहना चाहिए कि खड़ीबोली के दक्षिण में विकसित रूप की ओर हिन्दी के विद्वानों का ध्यान नहीं गया। यद्यपि मानक हिन्दी की आधार भाषा खड़ीबोली रही तो भी हिन्दी के विद्वानों ने खड़ीबोली की पुरानी साहित्य-सम्पत्ति पर विचार न करके हिन्दी की अन्य उप-भाषाओं की विवेचना की। फलतः खड़ीबोली के विकास का इतिहास अन्धकार में पड़ा रहा। इसका कुपरिणाम यह हुआ कि आधुनिक हिन्दी के उद्‌भव और विकास की चर्चा करनेवाले विद्वानों ने भारतेन्दु-युग के पीछे के काल को अपने दृष्टि-पथ पर रखना आवश्यक नहीं समझा। खड़ीबोली के गद्य-पद्य के विकास का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से समझा जाने लगा। कबीर आदि इने-गिने कवियों को छोड़कर खड़ीबोली के अन्य कवियों और लेखकों की उपेक्षा की गई।

हिन्दी का जो रूप आज हमारे सामने है उसका पूर्ववर्ती रूप दक्खिन में विकसित हुआ है। खड़ीबोली के दक्खिन में व्यवहृत पुराने स्वरूप को देखकर हम यह बिश्वास करने को बाध्य हो जाते हैं कि भाषा की दृष्टि से आधुनिकता के तत्व आरम्भ-कालीन दक्खिनी में अभिव्यक्त हुए थे। इसलिए आधुनिक हिन्दी का स्रोत दक्खिनी में ढूँढा जा सकता है। दक्खिनी हिन्दी को आधुनिक हिन्दी का पूर्वरूप मानने में हमें संकोच नहीं करना चाहिए।

दक्खिन शब्द की उत्पत्ति

दकन या दक्खिन शब्द संस्कृत से निकला है। जब आर्य लोग उत्तर और पश्चिम प्रदेशों को पार करके पंजाब पहुँचे तो उनके सीधे हाथ की तरफ जो भाग दृष्टिगत हुआ वह दक्षिण कहलाया। प्राकृत में यह शब्द दक्खिन हो गया और अरबी फारसी में यह दकन हो गया।

'दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास' नामक ग्रन्थ में दक्खिनी के विद्वान डॉ. श्रीराम शर्मा ने लिखा है—दक्खिनी शब्द से वर्तमान बरार, हैदराबाद राज्य, महाराष्ट्र और मैसूर राज्य का बोध होता है। इस प्रदेश की गोदावरी और कृष्णा दो प्रधान नदियाँ हैं।[1] दक्खिन के इस भू-भाग में प्रचलित होने के कारण खड़ीबोली को दक्खिनी नाम मिला। वास्तव में दक्खिनी का प्रचार व प्रसार उपर्युक्त भू-भागों तक सीमित न रहकर सुदूर दक्षिण के तमिलनाडु और केरल तक बढ़ आया। तमिलनाडु के काज़ी महमूद बहरी ने 'मन लगन' नामक जो सूफी काव्य लिखा उसमें खड़ीबोली का दक्षिण में प्रचलित साहित्यक रूप परिलक्षित होता है। दक्षिण में प्रचलित पुरानी खड़ीबोली के स्वरूप पर प्रकाश डालने से पूर्व तद्युगीन ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर संक्षेप में विचार करेंगे।

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

नर्मदा के इस पार के सारे इलाके को उत्तरवाले दक्खिन के नाम से पुकारते हैं। पहले दक्खिन जाने का एक आम रास्ता था गुजरात। गुजरात पर पैर रखने के बाद ही लोग दक्खिन की ओर बढ़ सकते थे। निरन्तर आवागमन के होते रहने से गुजरात और दक्खिन में निकट का सम्बन्ध हो गया।

तेरहवीं शताब्दी के प्रारंभ से लेकर सन् १५२६ ई. तक पाँच राजवंशों ने भारत के शासन चक्र चलाए। गुलाम वंश का संस्थापक मुहम्मद गोरी का क्षत्रप कुतुबुद्दीन ऐबक प्रथम राजवंश का शासक था। तत्पश्चात् खिल्जी वंश के हाथ में शासन की बागडोर आई। इस वंश के पूर्वज अफ़गानिस्तान के 'खिल्ज़' नामक स्थान में रहनेवाले थे। तुर्की के साथ उनका सम्बन्ध होने

---

1 डॉ. श्रीराम शर्मा, दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास—पृ. ११

पर भी वे अफ़गानी आचार-विचार के कायल थे। तीसरा तुगलक वंश था जिसके पूर्वज तुर्क के निवासी थे।

सन् १६९६ ई. में तैमूर लंग के आक्रमण के फलस्वरूप सय्यद वंश को शासन में हाथ बँटाने का भाग्य हुआ। 'ये लोग अरब को अपना पूर्वज मानते थे, किन्तु ये पठान थे'।

उपर्युक्त पाँच राजवंशों के शासकों में केवल अलाउद्दीन खिल्जी और मुहम्मद तुग़लक को ही दीर्घकाल तक शासन करने का अवसर मिला था। इन दोनों को दक्षिण भारत के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करने का भाग्य हुआ।

भारत में सन् १२९६ से १३१६ ई. तक अलाउद्दीन खिल्जी का शासन था। सन् १२९६ ई. में देवगिरि के यादव नरेश रामदेव को अधीन करने के बाद सन् १३०३-४ ई. में वरंगल के काकतीय नरेशों पर आक्रमण करने केलिए अलाउद्दीन ने सैनिक भेजे। देवगिरि के युवराज संगमदेव के पिता के अनुरोध पर अलाउद्दीन ने मलिक काफ़ूर के नेतृत्व में एक सेना भेजी और देवगिरि पर विजय प्राप्त कर ली। बाद में यही देवगिरि उसके शासन-विस्तार का आधार बन गई। सन् १३११ ई. में मलिक काफ़ूर ने द्वारसमुद्रम के होयसला नरेश और मलाबार के पाण्ड्य नरेश पर हमला किया। इस समय देवगिरि उसका केन्द्र रही। सन् १३३२ ई. में रामदेव की मृत्यु के पश्चात् देवगिरि दिल्ली शासन में मिलायी गई। दिल्ली पर तुग़लक वंश का शासन आरंभ हुआ तो गयासुद्दीन तुग़लक ने अपने पुत्र को भेजकर वरंगल को अपने अधीन कर लिया।

अलाउद्दीन खिल्जी के अधीन जब गुजरात और दक्खिन आए तब इन दोनों का सम्बन्ध और बढ़ा। अलाउद्दीन ख़िल्जी ने अच्छी तरह शासन चक्र चलाने के उद्देश्य से गुजरात और दक्षिण को सौ-सौ गाँवों में विभक्त किया और प्रत्येक गाँव का अधिपति एक तुर्क सरदार नियुक्त हुआ। 'ये अमीरां सदा' कहलाते थे। वे सिर्फ़ गाँव की सम्पत्ति के अधिपति ही नहीं अपितु अपने गाँव की रक्षा करने का दायित्व भी उनको दिया गया। ये तुर्क सरदार अपने सगे-सम्बन्धियों और सहायकों को अपने साथ लाये और गुजरात एवं दक्खिन के सारे ग़ाँव इन लोगों से आबाद हो गए। ये लोग़ जो भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आए थे, अपने-अपने घरों में अपनी-अपनी बोलियाँ बोलते थे, मगर जब वे आपस में मिलते थे, हिन्दी का व्यवहार करते जिसे उत्तर से वे अपने साथ

लाये हैं। स्थानीय लोग भी अपने शासकों की ज़बान में अपना शब्द मिलाकर बात करते थे। तीस बत्तीस साल में तुर्क सरदार और उनके परिवार इस तरह आबाद हुए कि दक्षिण उनका वतन सा हो गया।

खिल्जियों के बाद जब तुग़लकों का शासन दक्खिन में स्थापित हुआ तब हिन्दी को और बल मिला। मुहम्मद बिन तुग़लक (राज्यकाल सन् १३२५-१३५१ ई.) ने दिल्ली के बजाय देवगिरि को अपनी राजधानी बनाई तो दक्खिन में हिन्दी के प्रयोग करनेवालों की संख्या और बढ़ गई। बादशाह तुग़लक ने सन् १३२७ ई. में दिल्ली के सारे जनों को दक्षिण की ओर रवाना होने का हुकुम दिया। दक्खिन में अपने समुदाय के लोगों को बसाकर हिन्दू आक्रमण से राज्य की रक्षा के उद्देश्य से मुहम्मद बिन तुग़लक दिल्ली के उलेमा एवं सूफी फकीरों को बड़ी संख्या में दौलताबाद लाये। निज़ामुद्दीन चिश्ती की प्रेरणा से चार सौ सूफी संत पहले से ही दक्षिण में आ बसे थे। मुहम्मद बिन तुग़लक के आदेश से शैख़ बुरहानुद्दीन गरीब को भी दौलताबाद आना पड़ा था जो निज़ामुद्दीन चिश्ती के मुरीद और ख़लीफा थे। इसका यह अर्थ नहीं है कि केवल मुसलमान ही लाये गए थे। बहुत-से हिन्दू भी उसके आदेश को मानकर यहाँ चले आए। सन् १६२७-२८ के दो शिला-लेखों से पता चलता है कि मुहम्मद बिन तुग़लक के शासनकाल में हिन्दू संतुष्ट थे। एक शिलालेख में तुग़लक को 'शक्तिमान शाका प्रभु' लिखा गया है। अत: मुसलमानों के साथ-साथ दिल्ली के हिन्दू भी दौलताबाद में आए। ज़ियाउद्दीन बर्नी का कहना है कि इमारतों और महलों में कुत्ते बिल्ली तक न रहे।[1] 'तारीखे फरिश्ते' में भी तुग़लक के राजधानी स्थानान्तरण का वर्णन मिलता है।

दक्खिन, गुजरात और मालव में अलाउद्दीन खिल्जी ने उत्तर के असंख्य परिवारों को बसाया था। मुहम्मद बिन तुग़लक वहीं सारी दिल्ली उठाकर ले आया। अब आप ही कल्पना कर सकते हैं कि ऐसी हालत में दक्खिन और गुजरात में भाषा की दृष्टि से कैसे-कैसे और क्या-क्या परिवर्त्तन हुए होंगे। इस प्रकार आधी शताब्दी बीत गई थी कि 'अमीराँ सदा' ने मुहम्मद बिन तुग़लक के खिलाफ विद्रोह किया। अलाउद्दीन बहमनी सम्राट नियुक्त

---

1. ज़ियाउद्दीन बर्नी, तारीखे फीरोज़शाही (उर्दू)
पृ. ६७३, मर्कज़ए उर्दू बोर्ड, लाहौर

हुआ (सन् १३४७ ई.)। अब दक्खिन का शासन उन लोगों के हाथ में आ गया, जो तुर्क होने के बावजूद अपने को दक्खिनी कहने में गर्व का अनुभव करते थे। सन् १३४७ ई. से लेकर तकरीबन तीन सौ साल से ज्यादा अर्से तक यह ज़बान जो उत्तर भारत से आई थी दक्खिन में विकसित हुई जिसे आज भी हम दक्खिनी हिन्दी के नाम से पुकारते हैं।

दक्खिन में हिन्दी के फैलने, बढ़ने और विकास पाने के ऐतिहासिक कारणों का एक अति संक्षिप्त विवरण ही दिया गया है। कतिपय अन्य कारण भी हैं जो दक्खिन में हिन्दी के प्रचार-प्रसार में सहायक हुए। वे निम्नांकित हैं :

१. दक्खिन में तेलुगु, कन्नड़ और मराठी बोली जाती थीं। इनके अतिरिक्त छोटी-छोटी बहुत-सी भाषाएँ प्रचलित थीं। इनमें कोई भी भाषा चाहे छोटी हो या बड़ी सम्पर्क भाषा के रूप में काम नहीं दे सकती थी। इसलिए उत्तर से आए जनों को अपने साथ लायी भाषा हिन्दी को सम्पर्क भाषा बनाने में कोई कठिनाई महसूस नहीं हुई। दक्खिन में आम भाषा का न होना हिन्दी केलिए अच्छा सिद्ध हुआ।

२. जब मुसलमानों ने दक्खिन को अधीन कर लिया तब वहाँ छोटी-छोटी रियासतें पारस्परिक फूट और कलह से कमज़ोर हो गयी थीं। राजनीतिक शिथिलता के कारण साहित्रिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में दुर्बलता आ गई जिससे नई आई ज़बान को साहित्य के माध्यम बनने में सहायता मिली।

३. किसी देश पर कब्जा करने तथा साम्राज्य में मिलाने का काम तुरंत नहीं किया जा सकता। उस केलिए पहले से निश्चित योजना के अनुसार काम लिए जाते हैं। इतिहास में उदाहरण देखे जा सकते हैं। यात्री, व्यापारी आदि पहले उस देश में पहुँचते हैं जिनके ज़रिए उस देश की जनता के अभाव, उनकी माँगें, जनता के बीच की अनबन और बैर आदि समझे जाते हैं और इन सबों से विजेता फायदा उठाते हैं। दक्खिन का इतिहास अपर्युक्त तथ्यों को प्रमाणित करता है।

अलाउद्दीन खिल्जी के दक्खिन पर अधिकार जमाने से बहुत पूर्व ही अपने सिद्धान्तों के प्रचार करते हुए घूमनेवाले अनेक सूफी साधक नज़र आते हैं। हाजी रूमी (११६० ई.) सय्यद शाह मोमिन (१२०० ई.), बावा सय्यद

मुज़हिर आलम (१२२५ ई.) शाह जलालुद्दीन गंज खाँ (१२४६ ई.) सय्यद अहमद कबीर हयात कलन्दर (१२६० ई.) बाबा शरफुद्दीन (१२८८ ई.), बाबा शिहाबुद्दीन (१२७१ ई.) आदि कतिपय ऐसे सूफी संत हैं जो दक्खिन में हिन्दी के माध्यम से अपने दर्शन का प्रचार कर रहे थे। अलाउद्दीन के अधीन दक्खिन हो गया तो सूफ़ियों को बड़ा सम्बल मिला। पीर मकसूद (१३०० ई.) पीर मिठे (१३३१ ई), गेसूदराज के पिता सय्यद यूसुफ़ शाह राजू किताल (१३३५ ई.), शाह बुरहानुद्दीन ग़रीब (१३३७ ई.), शेख ज़ियाउद्दीन (१३३८ ई.) और बहुत-से सूफियों के नाम लिए जा सकते हैं जो हिन्दी, हिन्दवी या दक्खिनी (खड़ीबोली के विविध नाम) को अपनी वाणी का माध्यम बनाते थे।

दक्खिन में हुए राजनीतिक तथा सामाजिक परिवर्तन ने दक्खिनी के विकास में सहायता पहुँचाई। यदि उस समय की भाषा का स्वरूप जानना है तो हमें इन सूफ़ी-संतों की वाणी का सहारा लेना पड़ेगा जो कि एक जगह न होकर कई जगहों में बिखरी पड़ी है।

सन् १३४७ ई. में अबुल मुज़फ़्फ़र बहमन शाह दक्खिन का शासक बना। उसने अपने राज्य की राजधानी गुलबर्गा को बनाया। १८० वर्ष तक बहमनी शासन कायम रहा। इतिहास बताता है कि बहमनी शासकों के संरक्षण में हिन्दी फूली-फली। बहमनी काल के साहित्य का विश्लेषण करें तो आप को विदित होगा कि इस काल में तीन प्रकार की रचनाएँ निर्मित हुईं। एक तो काव्य का वह प्रकार है जिसमें किसी दिलचस्प और प्रसिद्ध कहानी को काव्य का कलेवर दिया जाता है। फख़्रुद्दीन निज़ामी की 'मसनवी कदमराव पदमराव' इस प्रकार का एक काव्य है। दूसरा, काव्य का आधार कोई धार्मिक घटना बनती है। अशरफ़ बियाबानी का 'नौसरहार' इस प्रकार का काव्य है। तीसरा, काव्य का वह प्रकार है जिसमें तसव्वुफ़ का प्रतिपादन होता है। मीराँजी शम्सुल उश्शाक के 'खुशनामा', 'खुशनग़ज़', जानम के 'इरशादनामा' आदि काव्य इस कोटि में आते हैं।

दक्षिण में प्रचलित खड़ीबोली के विविध नाम

दक्खिन में प्रचलित हिन्दी विविध नामों से पुकारी जाने लगी। यद्यपि हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी ये तीनों नाम ही प्रमुख रहे हैं तो भी गूज़री, रेख़ता,

देहलवी, पठाणि भाषा, तुलुक भाषा, भाखा, भाका आदि नामों से भी यह भाषा जानी जाती रही है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि दक्खिनी के हज़ारों साहित्यकारों में किसी एक ने भी अपनी भाषा को उर्दू नाम से नहीं पुकारा।

दक्खिनी में उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थों के उपेक्षित होने का कारण यही है कि अरबी-फारसी लिपि में ही यह लिपिबद्ध हो गया था। लिपि की अज्ञानता की वजह से साहित्यिक ग्रन्थों का उपेक्षित हो जाना स्वाभाविक है। मॉप्पिला बोली में निर्मित मलयालम का साहित्य अरबी-मलयालम लिपि में लिपिबद्ध होने के कारण विद्वानों की आँखों से ओझल रहा। हिन्दीतर प्रदेश में निर्मित होने के कारण भी दक्खनी की ओर विद्वानों का ध्यान नहीं गया।

भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी को ही यह सौभाग्य मिला कि उसे भारत में यत्र-तत्र-सर्वत्र फैलने का अवसर मिला। क्षेत्रीय भाषाओं के साथ रहकर साहित्य के माध्यम बनने का सौभाग्य भी हिन्दी को प्राप्त हो सका है। अरबी-फारसी लिपि में निर्मित दक्खिनी का साहित्य हिन्दी साहित्य का अभिन्न अंग ही है। इस सन्दर्भ में मलयालम की पुरानी लिपि में लिखित हिन्दी ग्रन्थों के बारे में दो शब्द लिखना अनुचित नहीं होगा। केरल विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्यामंदिर एवं हस्तलिखित ग्रन्थालय में उपलब्ध ताड़पत्रीय ग्रन्थों में दक्खिनी हिन्दी का केरलीय रूप देखा जा सकता है। इन ग्रन्थों के उपलब्ध होने के बाद हम इस बात को निश्चय के साथ कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओं में हिन्दी ही आसेतु हिमाचल व्यवहार में आई। दक्खिनी का क्षेत्र भी दक्खिन तक सीमित न होकर केरल तक बढ़ आया है।

दक्षिण भारत में विकसित खड़ीबोली का स्वरूप

यह हम बता चुके हैं कि गुजरात से होकर ही लोग दक्खिन की ओर आते थे। हिन्दी का प्रवेश पहले गुजरात में हुआ। गुजरात में पुरानी हिन्दी के जो नमूने मिलते हैं वे या तो सूफियों की वाणी है जिनसे उस काल की जन भाषा का परिचय पाया जा सकता है, या फिर काव्य के वे नमूने हैं जो शाह बाजन, काज़ी महमूद दरियाई, शाह अली जीवगाँधनी और ख़ूब मुहम्मद चिश्ती ने अभिव्यक्त किए थे।

अलाउद्दीन खि़ल्जी के गुजरात पर आधिपत्य जमाने के पहले ही गुजरात की भाषा पर अरबी और फारसी के प्रभाव पड़े थे। उस काल की हिन्दी का स्वरूप आचार्य हेमचन्द्र के उन दोहों से स्पष्ट होता है जिन्हें उन्होंने अपने व्याकरण में उद्धृत किया है। गुजराती लिपि में लिपिबद्ध कतिपय उदाहरण भी उपलब्ध हैं जिनसे उस समय प्रचलित हिन्दी का स्वरूप समझा जा सकता है।

सर्वप्रथम हमारी दृष्टि नूरुद्दीन मुहम्मद उर्फ सद्गुरु (मृत्यु सन् १००४ई.) के 'सत्पंथी रसाइल' पर पड़ती है जिसमें वेद और योग को इस्लामी तसव्वुफ के रंग में भजनों और ज्ञान के रूप में प्रस्तुत किथा गया है। यह ग्रन्थ आज भी खोजों के यहाँ 'कलाम पाक' माना जाता है। जब इस पवित्र वाणी को हिन्दी में लिप्यंतरित किया जाता है तब उस काल की हिन्दी का परिचय हमें प्राप्त होता है :

१. सत्गुरु कहे रे पीव पीव करे
पन पीव पीव न पावे कोए
मुख जपन ताँ जू पीव मिले
तू शरसाटा न होए रे।

२. सत्गुरु कहे रे जूठा मरना तू सब जाग मरे
उने साचा न रे कोए
अगुर गिनान जे मरे
तब से मरी मरन न होए।[1]

ऊपर उद्धृत पंक्तियाँ गुजरात की प्राचीनतम हिन्दी का उदाहरण हैं। आज लगभग एक हज़ार वर्ष बीत जाने पर भी इसकी भाषा हिन्दी से बहुत दूर की प्रतीत नहीं होती।

जब हम गुजरात में व्यबहृत हिन्दी के प्राचीनतम स्वरूप पर विचार करते हैं तब हमें सन् १४३३ ई. में लिखित 'बहरुल फ़ज़ाइल' नामक ग्रन्थ को लेना पड़ता है। इस ग्रन्थ के लेखक का नाम है फज़लुद्दीन वलखी। वे

1. नवाए अदब, बम्बई, पृ. ५६, जूलाई १९५७ भाग ८

अहमदाबाद के पास रहनेवाले थे। यह ग्रन्थ मुख्यत: अरबी-फारसी भाषा में है। किन्तु उसके चौथे अध्याय में दिये गए हिन्दी शब्दों का ऐतिहासिक महत्व है। मौलाना शीरानी ने लिखा है कि बलखी ने ढाई सौ से अधिक हिन्दी शब्द फारसी-अरबी शब्दों को समझाने की दृष्टि से प्रयुक्त किए हैं।[1] 'बहरुल फज़ाइल' में प्रयुक्त कतिपय हिन्दी या हिन्दवी शब्द द्रष्टव्य हैं:

पालक, तिरफला, घिरकित (गिरगिट), चूना, जुलाहा, चकनाचूर, भोजपतर, मलाई, घुंजरु (घुंघरु), अखरोत (अखरोट), सूवर (सुवर), तांबा, गुदगुदी, धुआँ, सोंथी, थोडी (ढोडी), थान्ह, छाछ, कजूर (खजूर), चौतर (चौतड), फूल, ढींग, कटोरा, मूंडन, भंग, घास इत्यादि इत्यादि।

इसमें हिन्दवी का निम्नलिखित पद्य भी मिलता है :

देख पेख पीव पर घर जावे
तिस निस नैनू नींद न आवे।

इसी भाषा को बलख़ी हिन्दवी के नाम से पुकारता है। यह भी ध्यान देने योग्य है कि बलख़ी गुजरात का निवासी है।

अलाउद्दीन खिल्जी के समकालीन प्रसिद्ध कवि फख़रुद्दीन कव्वास ने अपने ग्रन्थ 'फरहंग नामा' में शब्दों के अर्थ स्पष्ट करने केलिए हिन्दवी शब्दों का प्रयोग किया है।

सामासिक संस्कृति को जन्म देनेवाले गुजरात के हिन्दी लेखकों ने अपने बच्चों और बुजुर्गों के नाम भी शुद्ध अरबी न रखकर देशी शब्दों को मिलाकर दोनों का समन्वयात्मक रूप रखा। यथा :

शाह राजू किताल, शाह प्यारन, मियाँजी, मंझन मियां, मूसा सुहाग आदि।

ज़बान हिन्दवी या देहलवी

अब हम सूफियों की हिन्दी का परिचय पायेंगे जिसे गुजरात की जनता समझती थी।

---

1. मौलाना शीरानी, मकालात, भाग १ पृ. ११८

१. शेख बहाउद्दीन बाजन (सन् १३३८—१५०६ ई.)

आप बुरहानपुर के रहनेवाले थे। संगीत को आप बहुत चाहते थे। 'खज़ाइन रहमतुल्ला' माम से आप का एक फारसी ग्रन्थ है। किन्तु इसी ग्रन्थ के 'खजीना हफ़्तम' के अन्तर्गत शेख बाजन ने दूसरों की वाणी के साथ-साथ अपने पद्य, ज़िकरियाँ और दोहे भी दिए हैं।

जिकरी (ज़िक्र का गूजरी रूप) भजन और गीत जैसी रचना है जिसमें दोहों को भी प्रयुक्त किया गया है। बाजन ने अपनी भाषा को कहीं 'ज़बान हिन्दवी' कहा है और कहीं 'ज़बान देहलवी' कहा है। ये दोनों नाम हिन्दी के उस रूप केलिए व्यवहृत होते थे जो गुजरात में उन दिनों समझी जाती थी। उदाहरण द्रष्टव्य है[1] :

सब फल बारी तू है भँवरा भी भर लेव बास
रावल मेरा राज करे री मंदिर के पास
बाजन बाजन बाजन तेरा तुझ बाजें ना जीवन मेरा।

एक अन्य उदाहरण द्रष्टव्य है:

जब लग जीव चले है मेरी बैरी कहवे शारा पौराऊँ
मुन्ह लहू भर लेवँ तेरा नावँ करीम व रहीम तेरा नावँ
बाजन जीव जीवे तुझ नावँ भरपूर रहया तू सबके ठावँ
तुझ नावँ की मैं होए बारी जाऊँ।

भाषा का यही रंग रूप गुरु नानक के यहाँ भी मिलता है। बाजन की भाषा का रूप निम्नलिखित पंक्तियों से भी मिलता है;

खोलो खोलो री पार दिखलाव मुखो
जिस मुखो देखें मेरी नैनो जी सुखो
जिस मुखो देखें दुख दिलंदर जावे
शाह रहमत का दरसन बाजन पावे।

बाजन की भाषा का मूल रूप खड़ीबोली है जिसमें व्रज, पंजाबी, गुजराती और राजस्थानी के सम्मिलित तत्व देखे जा सकते हैं।

---

1. डॉ. जमील जालिबी, तारीखे अदब उर्दू पृ. १०८

२. काज़ी महमूद दरियाई (सन् १४१९-१५३४ ई.)

आप गुजरात के वरिष्ठ सूफी हैं जिनके मज़ार पर लोग बड़ी श्रद्ध के साथ जाते हैं। आध्यात्मिक प्रेम की छटा से उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व उज्ज्वल और आकर्षक हुए हैं। 'तुहफ़तुल किराम', 'मिरात अहमदी', 'खज़ीनतुल असफिया' आदि ग्रन्थों में काज़ी महमूद दरियाई के व्यक्तित्व का वर्णन मिलता है।

आप ने अपने गीत गाने केलिए लिखे हैं। संगीत से उनका इतना लगाव था कि संगीत के नशे में ही उनका अंतिम क्षण भी बीता था। अंजुमन तरक्की ए उर्दू में उपलब्ध महमूद दरियाई की हस्तलिखित रचना से डॉ. जमील जालिबी ने जो पंक्तियाँ उद्घृत की हैं उनसे काज़ी महमूद की भाषा का परिचय पाया जा सकता है:

साईं कन एक बार अखार X हौं दुख्या करूँ जुहार
तेरे मुखडे के बलिहार
महमूद साईं सेवक तेरा X तूँ तो समरत साईं मेरा
करें हमारी सार
उमत नबी मुहम्मद की यह X महमूद तेरा दास
बरकत पीर चायलंधा X साईं पूरकें मन की आस।

'दर घनाश्री' में भी यह रंग देखा जा सकता है:

मुज दरसन साईं का भावे X चित मेरी और न आवे
जब हँस मुख आप दिखलावे X सब सहय्याँ हावरी लावे
छुप चंद उपचार जावे
उस रूप कावे कहय्या X देख तारों तेज न सुहय्या
कर बैठ सूरज मुख रहय्या
मंगल बुध बिरहसपत आरे X सुक्कर सनीचर बार जुहारे
राह की साईं लोन उतारे
काज़ी मुहम्मद मेरे मन X चाऊँ चायलंधा पीर मैं पाया
भाया उन महमूद कूँ मीत मिलाया।

विरह की स्थिति तथा दर्शन की अभिलाषा को व्यक्त करनेवाली 'दर बिलावल' की ये पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

जाग पियारी अब क्या सोवे
रैन कीनी त्यूँ दिन क्या खोवे
सोती मीत निपावे कोए
खडी रहा कन सोवे सोए
जिसके शह कूँ ऊँग न आवे
सूधन क्यूँ रैन गँवावे
जाग जाग नेह न लावे
सोते बैठे क्यूँ शह पावे
महमूद न जाग न शह कूँ रावे
सू कर मीत पीछे पछनावे।

इश्क की हालत बदले हुए इशारों के साथ 'दर धनाश्री' में मिलती है :

नयन रंगीलों के कुरबान X नयन छबीलों के कुरबान
नयन जंजालों के कुरबान X नयन सलोनों के कुरबान
जिन देखे सूरा कर घोले आपस करे निधान
देखन नयन मिरक में मूई झील होए निसवान
पंखी पंथी देखत मूई काली कीती जान।

महमूद दरियाई की भाषा पर ब्रज और गुजराती का गंभीर प्रभाव पड़ा है।

३. शाह अली मुहम्मद जीवगाँधनी (मृत्यु सन् १५६५ ई.)

शाह अली मुहम्मद गाँधनी शाह इब्राहीम के पुत्र थे। अहम्मदाबाद में उनका मज़ार स्थित है। गाँधनी का कलाम उन्हीं के शिष्य अब्दुर्रहमान कुरैशिल अहमदी ने सम्पादित किया और उसका नाम 'जवाहिर असरारुल्ला' रखा। दूसरी बार उनके पौत्र सय्यद इब्राहीम बिन शाह मुस्तफा ने एक दीर्घ अरबी वाक्य से शुरू होनेवाले एक दीबाचे लिखा। सम्पादक ने 'अ' से शुरू होनेवाले सभी पद्यों को एक साथ रखकर अक्षर क्रम में पद्यों को प्रस्तुत किया।

सूफी चिन्तन को गाँधनी ने वाणी दी। अनेक उदाहरणों एवं किस्से-कहानियों के द्वारा सूफ़ी दर्शन को समझाने का प्रयास किया। डॉ. जमील जालिबी के शब्दों में "गाँधनी का कलाम हिन्दवी रिवायत का नुक्ता कमाल है।"[1] उदाहरण द्रष्टव्य है :

> यह जीव तो रहता नहीं
> होर मन दुख सहता नहीं
> मुज जग कहे जमता नहीं
> पीव बाज मुज कमता नहीं।

देखिए :

> आपै खेलूँ आप खिलाऊँ
> आपै अपस ले कल लाऊँ।

गुजरात में फैली हिन्दी गूजरी और हिन्दवी नामों से जानी जाती थी। गुजरात में पैर जमाने के बाद हिन्दी दक्खिन के दूसरे इलाकों में प्रविष्ट हुई। अब हम खड़ीबोली के दक्खिन में विकसित स्वरूप को स्पष्ट करने केलिए दक्खिनी के काव्यों से कतिपय उदाहरण प्रस्तुत करेंगे। खड़ीबोली की मध्ययुगीन काव्य भाषा से इन पंक्तियों की तुलना की जा सकती है।

सर्वप्रथम दक्खिनी का आदि आख्यानक काव्य 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा का मिसाल दिया जाएगा। फख्रुद्दीन निज़ामीकृत यह मसनवी सन् १४२५ ई. और १४३५ ई. के बीच में लिखी गयी। इस काव्य में कुल १०३२ पद्य मिलते हैं। इसमें प्रयुक्त बारह हज़ार शब्दों में दस हज़ार शब्द संस्कृतमूलक हैं। अरबी-फारसी शब्दों की संख्या लगभग दो सौ होंगी।

यह प्रसंग देखिए जहाँ कदमराव अपनी रानी की प्रशंसा कर नागिनी और कोडियाल (कोडियाल साँप) के आपस में मेल खाने की घटना का यों वर्णन करता है :

> सुन्या था कि नारी धरे बहुत छंद
> सू मैं आज दीठा तिरी छंद पंद।

1. डॉ. जमील जालिबी, तारीखे अदब उर्दू पृ. ११६

वही छंद जब मैं दीठा जग्ग में
उसी वेल थीं हौं पड़्या दग्ग में ।

सुजात एक नागिन कुजात एक साँप
असंगत दीटे खेलतैं लांप झांप ।

जू करतार मुँज कूँ कया होए राव
असंगत के क्यूँ देख सक्कूँ अन्याव ।

खड्ग काढ दूखा तहाया तखार
उसी ठार खोरस किया शब तहार ।

गई न्हास नागिन परान आप ले
परान आप ले कर गई पूंच दे ।

न अब थीं किसी नार पत्यावनाँ
न पत्यावनाँ न तिस रावनाँ ।

सुहाई कई आज नागिन किनार
पड़ी झाड़ तल छोड़ कि मुख भितार ।

यही देख मुँज मन भग्या तिरी नाँव
कि जे अछरियाँ होए भी ना पत्याव ।

तिरी नावँ का आन्य जे आन्न होए
करूँ न औरग्गन मरूँ जीव खोए ।

छुरी अत कुंदन सी कि जे होए
असंगत न तिस घाल ले पेट कोए ।

धधा साँप का होए जे कावड़ी
डरे क्यूँ न वह देख फांदा पड़ी ।

बड़े साच कहकर गए बोल अचूक
धधा दूद का छाचहा पीवे फूक ।

जिन्हेरी सरी हत कारन संवर
ययी देख तिस हत भोगे भंवर ।

प्राप्त न होए उड कूँ चंद खाए
मकोडा कवन कुछ चौखंड जाए ।

तुहीं फ़ख्रुदीन देख अन्याव राव
कि बिन दोस धन परहती दुख लाव ।

निज़ामी धरम दुक्ख क्यूँ राव दे
कि पतिवरत गुन पात धन सू किए ।[1]

उपर्युक्त पंक्तियों में प्रयुक्त शब्दों को देखिए :

सुन्या (सुना), दीठा (देखा), तिरी (स्त्री), जग्ग (जग), वेल (वेला), हौं (मैं), सुजात (उत्तम), कुजात (नीच), असंगत (बुरा सम्बन्ध), लांप-झांप (अठखेलियाँ), करतार (कर्त्ता), मुँज कूँ (मुझको), कया (कह्या, कहा), राव (राजा), सक्कूँ (सकूँ), अन्याव (अन्याय), खड्ग (तलवार), काढ (निकाल), ठार (स्थान), गई न्हास (भाग गई), परान (प्राण), पूंच (पूँछ), थीं (से), नार (नारी), पत्यावनाँ (विश्वास करना), भितार (भीतर), भग्या (टूटा), नाँव (नाम), जे (जो), अछरियाँ (अप्सराएँ), कुंदन (सोना), घालना (डालना, मारना), धधा (जला), फांदा (फंदा, रस्सी), दूद (दूध), छाचहा (छाछ), फूक (फूँक), पतिवरत (पतिव्रत), पात धन (पट्ट महिषी) ।

'मसनवी कदमराव पदमराव' के अन्य प्रसंग भी द्रष्टव्य हैं :

बुलाया मधरबुध कूँ राव पास
कह्या राव हौं फूल, तूँ फूल बास ।
न्होए फूल प्यारा कधीं बास बिन
न सर घाल ले कोई बास आस बिन ।
सभी ठाँव जे साँप कूढा चले
अपस ठाँव वह भी सू सीधा चले ।
भला भी तुहीं मुंज बुरा भी तुहीं
तेरे पाए (हौं) छोड़ जासूँ कहीं ।
न फिरे जे तूँ आज अभिमान मुंज
न परधान तूँ मुंज न हौं राव तुज ।
कंगन हत्त क्या देखनाँ आरसी
अहै राज तूँ देख क्यूँ हारसी ।
नन्हे की नन्ही बुद्धि माने न कोए
नन्हाँ सू नन्हाँ जे नबी पूत होए ।

1. फख्रुद्दीन निज़ामी, मसनवी कदमराव पदमराव, सं. डा. जमील जालिबी

इकायक कहूँ क्यूँ अपस नावँ हौं
कदमराव हीरानगर का सू हौं ।
जू कुज काल करना सू तूँ आज कर
न घाल आज का काम तूँ काल पर।
भले कूँ भलाई करे कुच न्होए
बुरे कूँ भलाई करे होए तोए ।[1]

अब दक्खिनी के प्रसिद्ध सूफी आचार्य मीराँजी शम्सुल उश्शाक़ (रचनाकाल सन् १४९६ ई.) की काव्य भाषा देखिए :

अब ना छिपूँ, अब न डरूँ, तो कहाँ लग डरूँ
हमें गरीब निपाइए तेरे आस थी आसा धरूँ ।

माताजी बालक थी रूसे जाना इन्हीं किधर ?
आप जिस मारग ला से मीराँ मैं तो जाऊँ तिधर ।

अपने दूसरे काव्य 'शहादतुत्तहक़ीक़' (पद्य संख्या ५६३) के अंत में मीराँजी अपने पाठकों से कह रहे हैं :

खड भाका छोड दीजे चुन माने मानिक लीजे
जे मग़ज़ मीठा लागे तो क्यूँ मन उस थे भागे
वह मग़ज माने लेव सब झाले झाड़ देव ।

'नौसरहार' (सन् १५०३ई.) के रचयिता अशरफ़ ने अपनी भाषा को मीराँजी की तरह हिन्दवी कहा है । निम्नलिखित पंक्तियों से प्रस्तुत काव्य की भाषा का परिचय पाया जा मकता है :

जैनब अहै उसका नाम
नयन सलोने जूँ बादाम ।
अजहद साहब हुस्न जमाल
जीबा मौजूँ सूरत हाल

1. फख्रुदीन निज़ामी, मसनवी कदमराव पदमराव, सं. डा. जमील जालिबी

माथा जानूँ सूरज पाट
पाके जानूँ चांदा लाट ।
दाँत बत्तीसी तैसी जान
जैसे हीर नेह की खान ।
सरपाँ जैसे लम्बे बाल
चंदर सूरज दोनों गाल ।
चांद पेशानी दांत रतन
खंदान रू हम सीमें तन ।
सका सूरत खूब अर्ज़हद
सब्ज़ा रंग हारे मौजूँ कद ।[1]

'इर्शादनामा' (पद्य संख्या २५००) काव्य में कवि शेख बुरहानुद्दीन जानम (सन् १५८२ ई.) ने अपनी भाषा के बारे में बहुत ही महत्वपूर्ण बात कही है। वह युग ही ऐसा था कि अरबी-फारसी में लिखने वालों की ही इज्जत होती थी। जो संस्कृत को अपने विचारों की वाहिका बना सकता था वही उत्तर में आदर का पात्र बन सकता था। हिन्दी में लिखनेवालों को सम्मान की दृष्टि से कोई देखता नहीं था। लेकिन जानम ने जन भाषा को अपने विचारों का माध्यम बनाया। अपने काव्यारंभ में हिन्दी में लिखने के बारे में जानम ने ये तर्क प्रस्तुत किए :

ऐब न राखें हिन्दी बोल
माने तो चक देक धंडोल ।
जूँ के मोती समंदर सात
डाबर में जे लागे हात ।
मोत्यों केरा था अंबार
परी कीता हारें हार ।
हिन्दी बोलूँ किया बखान
जे गुरु परसाद था मुंज ग्यान ।[2]

इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय (शासनकाल सन् १५८० से १६११ ई.)

1. शेख अशरफ, नौसरहार
2. शेख बुरहानुद्दीन जानम, इर्शादनामा, सं. प्रो. मुहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी

जो 'जगद्‌गुरु' नाम से विख्यात् थे, महान कवि थे। अपने काव्य 'किताब नौरस' में 'जगद्‌गुरु' ने विविध राग-रागिनियों में पृथक् गीत रचे हैं। 'दर मकाम भैरव' में नौरस का यह गीत द्रष्टव्य है :

प्यारे चांदा आखूँ कथ दीन दोई दुखी
मन चाहै सू निस भाई हम तुम कि है जब सुखी

पैन

बुझानू दीपक कूँ तेरा सूँ दिनकर आवेगा
घर घर छुप रह जासूस सब सुध पहुँचावेगा
पौ फाटा तो देख जा टाक धावेगा
संध्याँ का सिगार लोब कठ लावेगा
रात थोडी मदन बहूत बना उठ जावेगा ।[1]

(हे प्यारे चांद ! तुझ से बताऊँ कि दिन में हम दोनों दुखी रहते हैं। इसलिए अब जबकि मन पसंद रात आई तो हमें प्रसन्न होना चाहिए। दीपक को बुझा दूँ वर्ना डर है कि कहीं सूरज निकल न आए। और इस घर का जासूस मिलन की स्थितियों को सूरज तक न पहुँचावे। पौ फटने आई। देख ऐसा न हो वह चला जाए। हे इब्राहीम ! यह सोने का समय नहीं। ऐसा मित्र फिर न मिलेगा। सायंकाल में पूरी तरह श्रृंगार कर लेना चाहिए ताकि मित्र तेरी तरफ आवे। रात थोड़ी ही बाकी है। प्रेम की आग तेज़ है। अफसोस कि मित्र बहुत जल्दी चला जाएगा।)

'बुध परकास' इब्राहीम आदिलशाह का दूसरा ग्रन्थ है। इब्राहीम आदिलशाह के काल में अब्दुल ने 'इब्राहीमनामा' (सन् १६०३ ई.) में एक लम्बी मसनवी लिखी। कवि ने एक जगह लिखा है :

सुनो अब सिफ़्त शह रहन तख़्त ठाऊँ
विद्यापूर नगर है भी उसका जू नाऊँ।

सोलहवीं शताब्दी में तमिलनाडु के काज़ी महमूद बहरी ने हिन्दी में अपना प्रसिद्ध सूफ़ी काव्य 'मन लगन' लिखा। काव्यारंभ में बहरी ने यह घोषणा की :

---

1. इब्राहीम आदिलशाह, किताब नौरस सं. डॉ. नज़ीर अहम्मद, पृ. ११९, १२०, दानिश महल लखनऊ १९५५.

हिन्दी तो जवांच है हमारी
कहने न लगे हमन कूँ भारी ।

आधुनिक हिन्दी की भाँति संस्कृतनिष्ठ भाषा के प्रयोग को कवि अधिक पसन्द करते थे । संस्कृतमूलक शब्दों को ग्रहण करने का उनका जो प्रबल आग्रह था, उसे जानना हो तो काज़ी महमूद वहरी की निम्नांकित पंक्तियाँ देखिए :

मैं स्थूल कहूँ बजाय नासूत
सूक्ष्म तो उसे समज तूं मलकूत
कारन जबरूत, माहकारन
लाहूत अपस हिसाब में गिन
मैं नूर को जोत कर कया हूँ
जों जीव कों भाए त्यों भया हूँ
मैं मन जो कहूँ उसे तू दिल जान
उस दिल कों सगल में मुश्तमिल जान
होर जीव की जा परान बोल्या
इर्फ़ान न बोल ग्यान बोल्या
कर फिकर उसी क़ियास ऊपर
ए भाई न जा तूं भास ऊपर
अच्छर कों तूं छोड अरत कों देख ।[1]

दक्खिन में आई खड़ीबोली के स्वरूप को समग्र रूप से समझने केलिए आवश्यक है कि केरल में लिखित कतिपय पंक्तियाँ भी प्रस्तुत की जाए । तिरुवनन्तपुरम के सरवर खाँ और अब्दुल जलील हज़रत सूफ़ी गीतकार थे । कण्णूर के अतहर और तलश्शेरी के कासिम खाँ भी बड़े सरस कवि बताये जाते हैं । कासिम खाँ के एक 'तिल्लाना' गीत की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

वजे नक्कारे दनि के सारे
धूंध धनाधन धनधनाना
तबल पै धापां पड़े पिपड़धक

---

1. काज़ी महभूद बहरी, मन लगन

गिडधन गिडधन गिडधनना
अब रमझुम रमझुम नींदनियां से
हुम ज़म हो जाए हुशियार
x x x x
ऐ कासिम क्या खूब लिखा
तिल्लाने की ढब और उसके विना ।[1]

अब तक खड़ीबोली में लिखित काव्यों की भाषा का परिचय ही पाया जा सका है। अब दक्खिन में रचित गद्य के कतिपय अंश उद्धृत किए जा रहे हैं। गोलकुण्डा के प्रसिद्ध कवि एवं लेखक और निबंध कला के प्रथम प्रवर्त्तक मुल्ला वजही के 'सबरस' की कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं :

नेकी

नेकी पर चित धर, नेकी न को बिसर। वक्त पर इकस कूँ काम आना भोत बड़ा सवाब। प्यासे कूँ पानी पिलाना भोत बड़ा सवाब। पड़े कूँ उठाकर खड़ा करना बड़ा धरम है। नन्हे कूँ बड़ा करना ऐन करम है।
x x x x x x x x

तूँ अपनी हद पर चल जू दूसरे भी अपनी हद पर आवें, इसे बी मीठे ना होना जू मख्याँ तोड़-तोड़ खावें।

मैदान जंग

यू अपना होर पराया जानने की जागा नहीं है। न दोस्त जाना जाता न दुश्मन, मारा मार होती चारों किधन। अक्ल उस वक्त आकर अक्ल नहीं करती, दीवानगी आकर अंग में भरती। तन सब होता सुन, हात चलता होर मारने च की रहती धुन। यू अपना अपना बख़्त है, क़यामत का वक्त है। यू काम किसी की अक्ल में नै आता, ख़ुदा जाने उस वक्त क्या हो जाता ?[2]

दक्खिनी (खड़ीबोली) की पहिचान के चिह्न:

दक्खिनी के स्वरूप का विवेचन करने पर हमें इस बात का पता चलता है कि आरम्भ-कालीन दक्खिनी संस्कृतनिष्ठ रही है। बाद में संस्कृतनिष्ठ

---

1. हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन पृ. ३० सं डा. मलिक मोहम्मद
2. वजही के इंशाइए, जावेद वशिष्ट

स्वरूप से दक्खिनी का सम्बन्ध शिथिल हो गया और विषय विशेष के कारण दक्खिनी ने अरबी-फारसी शब्दों को पर्याप्त मात्रा में अपने क्रोड में समाहित कर लिया। अरबी-फारसी शब्दों को तोड़-मरोड़ कर अपने भाषिक साँचे में ढालने की जो प्रबल प्रवृत्ति प्रारम्भकालीन दक्खिनी में प्राप्त होती है, वह भी हिन्दी की सहज प्रवृत्ति के अनुरूप और उर्दू के सहज गुण के विपरीत है।

दक्खिनी का मूल ढाँचा खड़ीबोली का पुराना रूप ही है और क्षेत्र विशेष के प्रभाव से उसने कतिपय विशिष्ट गुण भी ग्रहण किए। ये क्षेत्रीय रंग और गुण दक्खिनी की पहिचान के चिह्न-से हो गए हैं। चाहे बोलचाल की दक्खिनी को लें या लिखित दक्खिनी को लें आप देखेंगे कि दोनों में कतिपय ऐसे शब्द सुनने को मिलते हैं जो हिन्दी की किसी अन्य बोली में प्रचलित नहीं हैं। इस प्रकार के शब्दों में निम्नलिखित आते हैं :

१. दक्खिनी में नहीं के साथ नकारार्थक नको (नक्को) का प्रयोग किया जाता है।
२. दक्खिनी में मराठी के अवधारणबोधक 'च' का प्रयोग किया जाता है।
३. समुच्चय बोधक अव्यय 'और' के अतिरिक्त 'होर' का प्रयोग बहुधा किया जाता है।
४. कर्तृवाचक शब्द हार, हारा, हारे, हारी आदि प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं।
५. हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों से प्रभावित तथा प्राप्त अव्यय 'बाज' का प्रयोग दक्खिनी में किया जाता है।
६. यद्यपि लिंग निर्णय के किसी व्यवस्थित नियम का अभाव है फिर भी 'आँ' लगाकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति दक्खिनी में सामान्यतः पायी जाती है।
७. शब्दावली की दृष्टि से संस्कृत और अरबी-फारसी शब्दों का आधिक्य है। इसके अलावा गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी आदि भाषाओं के शब्द भी दक्खिनी में प्रयुक्त किए जाते हैं। तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम आदि क्षेत्रीय भाषाओं का थोड़ा सा प्रभाव भी दक्खिनी पर पड़ा है।

मेवाती, हरियाणी, ब्रज आदि भाषाओं का प्रभाव भी दक्खिनी पर पड़ा। खड़ीबोली पश्चिम रुहेलखण्ड गंगा के उत्तरी दोआब तथा अम्बाला ज़िले की

उपभाषा है। इस क्षेत्र के आस-पास मेवाती (राजस्थानी), हरियाणी, पंजाबी और ब्रज बोली जाती है। इन भाषाओं का प्रभाव दक्खिनी पर गहरा पड़ा। इस पर पूरबी बोलियों का उतना ही प्रभाव रहा है जितना कबीरदास की भाषा में पाया जाता है। प्रस्तुत अध्याय में दक्खिनी की एक झांकी ही दी गई है। दक्खिनी का प्रत्येक कवि अपने में स्वतंत्र अध्ययन का विषय बना हुआ है। दक्खिनी के गद्य-पद्य ग्रन्थों के अध्ययन से राष्ट्रभारती का लोक-प्रतिष्ठित रूप समझा जा सकता है। खड़ीबोली के विकास के अज्ञात पहलुओं को दक्खिनी स्पष्ट करती है। यदि दक्खिनी का सम्पूर्ण साहित्य नागरी में लिप्यंतरित करके प्रकाशित किया जाय तो हिन्दी भाषा और साहित्य की सीमाएँ बढ़ जाएँगी और उसका इतिहास नवीन रूप धारण करेगा।

आधुनिक हिन्दी की विकास-परम्परा को अधिक स्पष्ट करने के उद्देश्य से दक्खिनी या खड़ीबोली के प्रथम आख्यानक काव्य 'मसनवी कदमराव पदमराव' का साहित्यिक एवं भाषिक अध्ययन प्रस्तुत किया जाएगा। प्रस्तुत अध्ययन के पश्चात् हम यह मानने को बाध्य हो जाते हैं कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' आधुनिक हिन्दी का आदि आख्यानक काव्य है और राष्ट्रभाषा हिन्दी का पूर्वरूप इस प्रकार लगभग छः सौ वर्ष पहले ही पल्लवित और विकसित हो चुका था। □

२. आधुनिक हिन्दी का आदिकाव्य : साहित्यिक मूल्यांकन

'मसनवी कदमराव पदमराव' आधुनिक हिन्दी का आदिकाव्य माना जा सकता है। दक्षिण भारत के भूभागों में प्रचलित दक्खिनी नाम से अभिहित खड़ीबोली हिन्दी का यह सर्वप्रथम आख्यानक काव्य है। दक्खिनी हिन्दी की प्रथम रचना होने का ऐतिहासिक गौरव भी इस काव्य को प्राप्त हुआ है। प्रस्तुत मसनवी को उर्दू साहित्य का प्रथम ग्रन्थ बताया गया है। किन्तु जब हम इस काव्य की साहित्यिक एवं भाषिक विशिष्टताओं पर विचार करते हैं तब हमें यह सत्य स्वीकार करना पड़ता है कि इसका गहरा सम्बन्ध हिन्दी से है; हिन्दी की खड़ीबोली और हरियाणी से जितना सम्बन्ध है उतना सम्बन्ध हिन्दी की उर्दू या अन्य किसी बोली से नहीं। केवल लिपि और छन्द के आधार पर इस ग्रन्थ को उर्दू मान लेने से हम यह सत्य दुहरा रहे हैं कि प्रारम्भ में हिन्दी और उर्दू दोनों एक थीं।

जब हिन्दी का संस्कृतनिष्ठ स्वरूप ऐतिहासिक कारणों से परिवर्त्तित हो गया और अरबी-फारसी के अलफाजों से वोझिल हो गई तब एक नवीन शैली का विकास हुआ जो उर्दू कहलाई। हिन्दी के संस्कृतनिष्ठ स्वरूप को स्पष्ट करनेवाली महत्वपूर्ण काव्यकृति है 'मसनवी कदमराव पदमराव'। इसकी भाषा आधुनिक हिन्दी के बहुत निकट की प्रतीत होती है भले ही इसका रचनाकाल पन्द्रहवीं शताब्दी का प्रथम चरण क्यों न रहा हो।

कवि-परिचय

'मसनवी कदमराव पदमराव' के लेखक हैं फख्रुदीन निज़ामी अथवा निज़ामी दकनी। निज़ामी के जीवनवृत्त के बारे में इतिहास मौन है। निज़ामी के परवर्ती कवियों ने भी उनका परिचय नहीं दिया है। कवि के जन्मस्थान, जीवनवृत्त एवं शिक्षा-दीक्षा के बारे में हमें कोई जानकारी उनके ग्रन्थ से भी नहीं मिलती। केवल 'शाहेवक्त' के अन्तर्गत प्रस्तुत स्तुतिपरक पद्यों के आधार पर यह बात निश्चय के साथ कह सकते हैं कि वे अलाउद्दीन बहमनशाह के ज़माने में रहे। यह अनुमान नहीं किया जा सकता कि उनका दरबार से ताल्लुक था या नहीं। मसनवी के सम्पादक डा. जमील जालिबी ने इसका रचनाकाल सन् १४२१ और १४३५ ई. के बीच बताया है। कवि ने अपने काव्य का शीर्षक फारसी में दिया है जिससे यह बात प्रकट होती है कि कविवर निज़ामी फारसी के जानकार थे। 'ख़ौफनामा' के रचयिता के रूप में एक और निज़ामी का नाम मिलता है। लेकिन इस ग्रन्थ की भाषा को देखते हुए डॉ. जमील जालिबी ने 'ख़ौफनामा' के रचयिता निज़ामी को बहुत ही पीछे के काल का बताया है। कवि के संस्कृत-ज्ञान का परिचय उन सहस्रों संस्कृत शब्दों से मिलता है जिनका सुन्दर प्रयोग निजामी ने किया है।

कवि ने ग्यारह स्थलों में अपना नाम लिया है। कहीं 'फ़ख्रुदीं' और कहीं 'निज़ामी' नाम लिये गए हैं। द्रष्टव्य हैं —

कहै फख्रुदीं एक साचा बचन (४८२)
निजामी धरम दुक्ख क्यूँ राव दे (१७६)
सुनाए फख्रुदीं तूं बिसर आंख्या (२८)
निज़ामी कहनहार जिस यार होए (२९)

दक्खिनी की प्राय: सभी रचनाओं में अरबी-फारसी शब्दों को ही नहीं बल्कि फारसी साहित्य-परम्परा के अनेक प्रसंग भी ग्रहण किए गए हैं। यह सत्य है कि दक्खिनी के कवियों ने विदेशी कथानक को भी भारतीय जीवन परिवेश के अनुरूप प्रस्तुत किया है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' मसनवी (द्विपदी) शैली में लिपिबद्ध और भारतीय पौराणिक आख्यान पर आधारित काव्य है। इसमें भारतीय विचारधारा को अभिव्यंजित किया गया है।

'मसनवी कदमराव पदमराव' की कथा संक्षेप में :

प्रस्तुत मसनवी की कथा संक्षेप में इस प्रकार है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' का नायक हीरानगर का राजा कदमराव है। अन्य जो पात्र इसमें आए हैं वे हैं कदमराव के दो मंत्री पदमराव और मधरवुध। इसके अतिरिक्त राजा कदमराव की धर्म पत्नी (नाम नहीं दिया गया है) और अक्खोरनाथ नामक योगी को भी स्थान दिया गया है। मसनवी के प्रारम्भ में राजा कदमराव अपनी पत्नी से बात करते दिखाई देता है। फिर वह अपने मंत्री पदमराव से बात करता है।

काव्य का प्रारम्भ ईशस्तुति, पैगम्बर की तारीफ और शाहेवक्त की स्तुति के बाद किया गया है। किन्तु शाहेवक्त के अंतिम पद्य एवं कथानक के प्रारम्भिक अंश के विनष्ट होने से यह बात नहीं जानी जा सकती कि वह कौन-सा प्रश्न है जिसे राजा कदमराव ने अपने मंत्री पदमराव से किया था।

राजा कदमराव अपने मंत्री को समझाता है कि बिना सोच-विचार करके बातें नहीं करनी चाहिए। मैं ने जो कुछ तुझ से कहा है (पदमराव से उसने क्या कहा था इसका भी पता नहीं चलता) उस पर बहुत ही ध्यान लगाकर विचार करके उत्तर दे दे। यदि तू अपने को दोष से बचाना चाहता है और आगे पश्चात्ताप करना नहीं चाहता तो सही उत्तर दे। तदनन्तर राजा अन्त:पुर में चला गया। वह इतना क्रुद्ध था कि इस पर उसका ध्यान ही नहीं गया कि किसने उसे सलाम किया और किसने नहीं किया। राजा अब सिंहासन पर बैठ गया। राजा का कोप देखकर अन्त:पुर में रानियाँ और दासियाँ घबरा गईं। रात भर राजा की यही स्थिति रही। कोई भी उसे शान्त नहीं कर सकी। जब रानी ने उसका हाथ पकड़ा तो राजा ने कहा कि और बातें छोड़ और यह बात बता कि नागिन ने क्या छल किया था। राजा ने पर-नारियों के साथ फिरनेवाले पुरुष की बड़ी भर्त्सना की।

अगला शीर्षक 'कदमराव का नागिनी से कहना' रखा गया है। किन्तु कथा की दृष्टि से यह शीर्षक गलत लगता है और होना यह चाहिए था 'पदमराव का नागिनी से कहना'। अब कथा यों चलती है। नागिनी से बात करके पदमराव कदमराव को मार डालने का निर्णय कर लेता है। इस विचार से पदमराव (जो नागराज बासुक है) कदमराव के सिरहाने रखे पान फूल में

जा बैठा। उसने सोचा कि राजा पान फूल की तरफ मुडेगा तब उसे काटेगा। किन्तु इस समय रानी कदमराव के पास गई और उसके पाँव दबाने लगी। पाँव दबाने से राजा जाग उठा। रानी ने भय के मारे विनय की कि हमारा जीवन तुम्हारी कृपा पर निर्भर है। यदि राजा सब बातें स्पष्ट करें तो मैं उसका सही उत्तर दे दूँगी।

अब कदमराव ने रानी से कहा कि नारी छलकपट ही जानती है। ऐसा छल मैं ने अपनी दृष्टि से देख लिया। मैं उस समय से बहुत दुखी और उदास हूँ। एक उत्तम कुल की नागिन ने एक निम्न कुल के नाग से 'मेल खायी' है। ईश्वर ने मुझे हाकिम बनाया। मैं इस बात को सहन नहीं कर सका। तलवार लेकर मैंने साँप को मार डाला। मेरी तलवार से उसकी पूँछ कट गई। इस घटना के वाद मुझे नारी पर विश्वास नहीं रहा। राजा ने कहा कि हे रानी! मुझे तुझ पर भी विश्वास नहीं है।

इस पर रानी ने बडे विनम्रभाव से कहा कि जो कुछ तू ने कहा वह बिलकुल सत्य है। किन्तु, यदि मेरा कोई दोष है तो मैं अपने प्राणों को न्योछावर करने केलिए भी तैयार हूँ। पर दूसरों का दोष मुझ पर न डाला जाए। उसने कहा कि पुरुष भी ऐसे मिलते हैं। मगर सब एक तरह के नहीं होते। रानी ने राजा को समझाया कि तेरा कोई पुत्र भी नहीं है। इसलिए अब उपवास करके राजकाज से अपना ध्यान हटाना अच्छा नहीं है। जो हो चुका वह तो हो चुका। लोगों के साथ भलाई करे जिससे कि बदले में भलाई मिले।

अपनी रानी की पातिव्रत्य सम्बन्धी बातों को कदमराव ने मान लिया। राजा ने कहा कि मुझे आदमी को सत्य मार्ग पर चलते देख कर सुख मिलता है। पुरुष स्त्री के छलकपट से परिचित नहीं है। उस स्त्री का मर जाना ही अच्छा है जो पर-पुरुष को चाहती है। रानी ने कदमराव की बात सुनी (यहाँ क्रम टूट जाता है)

कदमराव ने पदमराव से कहा कि मैं उस पुरुष को जानता हूँ जो लालच के बिना निःस्वार्थ होकर मित्रता निभाए। तू बुद्धिमान है। इसलिए तुझसे यह सब बता रहा हूँ।

कदमराव के मुँह से ऐसी बातें सुनकर पदमराव प्रसन्न हो उठा। उसने कहा कि यदि राजा मुझ पर पूर्ण विश्वास रखता है तो मेरे माथे पर कस्तूरी

मिले। तभी तो मैं अपने घर में इज्जत पाऊँगा और सारी दुनिया मेरा आदर करेगी। जब कदमराव ने उसके माथे पर हाथ फेरा तब उस को कस्तूरी मिली। उस समय से पदमराव के सर पर पद्म प्रकट हो गया। पहले नाग के सिर पर पद्म नहीं था। पर जब से कदमराव ने पदमराव के सिर पर अपना हाथ रखा तब से यह पद्म उत्पन्न हो गया था।

पदमराव खड़ा हो गया। उसने कदमराव से विनय की कि सुना है कल से आप उपवास करनेवाले हैं। यदि आप एक दिन भी किसी रंज से भूखे रहेंगे तो हीरानगर उजड जाएगा। यदि आप भोजन करेंगे तो मुझे सुख होगा। आज व्रत रखना अच्छा नहीं है और जो इस बात को अच्छा कहता है वह आप का दुशमन है। यदि आप प्रसन्न होकर भोजन नहीं करेंगे तो मैं अपने घर नहीं जाऊँगा।

कदमराव ने कहा कि हे पदमराव, मैं परदेशियों का आदर-सत्कार करना चाहता हूँ। यह हमारी परम्परा रही है कि हम परदेसियों की सेवा करते आए हैं। इसलिए किसी परदेसी को बुला लाओ कि मैं उसकी सेवा करूँ और दान दूँ।

पदमराव ने इसका विरोध करते हुए कहा कि देशाटन करनेवालों को अपने पास मत बुलायें। उनके सम्पर्क से दुख भोगना पड़ेगा। वे स्वभाव से बुरे होते हैं। पदमराव ने कहा कि मैं सहानुभूतिवश यह सब कह रहा हूँ। किन्तु कदमराव को यह बात बुरी लगी। वह बिगड गया। उसने पदमराव से पूछा कि तू मुसाफिरों और परदेसियों को बुरा क्यों कहता है। उनसे क्या दोष मिलेगा। तू एक मुसाफिर को बुला ला।

पदमराव छत तक ऊँचा हुआ और रात भर विनय करता रहा। वह निरन्तर यह बात दुहराता रहा कि योगियों से दूर रहें। योगी मद्य और मांस के नशे में रहता है।

पदमराव ने कहा कि मैं एक और बिनती करता हूँ। उसने कहा कि हमें दुनिया से कोई काम नहीं है, हमारा सब कुछ आप ही हैं। राजा कदमराव प्रसन्न हो गया और अपने मंत्री को बहुत ही मूल्यवान वस्त्र भेंट किए। कदमराव के अनुरोध को मानकर संपूर्ण राज परिवार को वस्त्र भेंट किए। तत्पश्चात् कदमराव ने यह आग्रह प्रकट किया कि किसी परदेसी को बुलाकर उसका

आदर-सत्कार करना चाहिए। दरबारियों में से एक ने कहा कि विदेश से मछंदर का पुत्र अक्खोरनाथ योगी आया है। वह बहुत बड़ा योगी है और कई बातों के परम ज्ञाता है। वह आप के दरबार की शोभा बढ़ायेगा। राजा ने कहा कि उसे तुरंत लाया जाए। वह आदमी अक्खोरनाथ योगी को कदमराव के दरबार में ले आया। योगी ने अपने चमत्कारपूर्ण कार्यों से राजा को अपना बड़ा भक्त बना लिया।

राजा योगी का ऐसा भक्त हो गया कि योगी के बिना वह पल भर केलिए भी चैन से रह नहीं सका। जब योगी ने राजा से कहा कि मैं लोहे को सोना बना सकता हूँ तो कदमराव ने लोहे का ढेर इकट्ठा करवाया, जिसे अक्खोरनाथ ने सोना बनाया। कदमराव की योगी के प्रति भक्ति बढ़ गई। अब योगी के बग़ैर वह अकेला रह नहीं सकता था। अक्खोरनाथ ने राजा को 'धनुरभेद' की की कला सिखा दी जिसे कदमराव ने एक महीने में सीख लिया। उधर प्रजा यह सोचकर हैरान थी कि आखिर राजा ने एक जोगी से मित्रता क्यों स्थापित की।

एक दिन की बात है। योगी ने राजा से कहा कि 'धनुरभेद' तो सामान्य बात है। मैं तो आप को 'अमरभेद' याने 'परकायप्रवेश' भी सिखा सकता हूँ। मगर एक शर्त है। वादा करो कि यह बात किसी से नहीं कहूँगा। अक्खोरनाथ ने राजा से एक जानवर माँगा। राजा ने योगी को वह तोता दिया जिसे रानी ने बडे प्रेम से पाल रखा था। योगी के कहे अनुसार राजा ने उसका गला दबा डाला और योगी ने अपनी आत्मा को तोते के शरीर में प्रविष्ट कराया। अब योगी तोता उडकर राजा के हाथ में आ बैठा। थोडी देर बाद योगी फिर अपने शरीर में वापस आ गया और तोता भी जिन्दा हो गया। यह देखकर राजा योगी का अत्यंत बड़ा भक्त हो गया।

राजा ने जब योगी से 'परकाय प्रवेश' सिखाने को कहा तब योगी ने उसे सिखाया। राजा ने जैसे ही मंत्र पढना शुरू किया महल का कलस टूट गया।

लोगों ने राजा को बहुत समझाया कि यह अमंगल सूचक है। किन्तु राजा ने उनकी बात नहीं मानी। वह 'परकाय प्रवेश' की कला सीखता रहा। जो लोग बिना सोच विचार के काम करते हैं, वे धन, माल, राजपाट जिस चीज़ के भी मालिक हों गँवा देते हैं। एक दिन योगी के कहने पर राजा ने 'परकाय प्रवेश' की कला दिखा दी। जब राजा तोते के शरीर में प्रविष्ट हो

गया अक्खोरनाथ योगी ने अपनी आत्मा को राजा कदमराव के शरीर में प्रवेश करा दिया। अब राजा तोता बन गया और योगी राजा बन गया।

किन्तु योगी कदमराव के रूप में आकर बहुत पछताया। क्योंकि वह न तो अंतःपुर की बातें जानता था और न महल के आदमियों से उसकी जान-पहचान थी। एक दिन पदमराव ने राजा से (योगी राजासे) पूछा कि आखिर उसका क्या कारण है कि जब तक अक्खरनाथ आप के दरबार में नहीं आया था राज पाट का सब काम ठीक चल रहा था। अब यह सब काम आप ने छोड़ रखा है। राजा ने कहा कि योगी ने मेरे साथ धोखा किया है और मैं ने उसे मार डाला है। देख यह उसी का मृत शरीर है।

योगी ने सोचा होगा कि अगर राजा तोते के भेस में जीवित रहा तो वह पुनः अपना रूप पा सकता है। इसलिए उसका सत्यानाश करना चाहिए। इस विचार से एक दिन योगी राजा ने पदमराव से कहा कि तोता मुझे गालियाँ दे रहा है। इसलिए अब इसकी घोषणा कर दी जाए कि जो उसको पकडकर लाएगा उसको इनाम दिया जाएगा।

पदमराव ने समझाया कि तोते को मार डालने से बदनामी होगी। योगी राजा को व्यवहार की जानकारी नहीं थी। मंत्री की बात भी वह ठीक समझ न सका। इसलिए जब पदमराव ने उसे समझाने की कोशिश की तो वह तलवार लेकर उसे मारने दौड़ा। किन्तु पदमराव उसकी वार से बच गया। योगी राजा को वह अब तक असली राजा ही समझे हुए था। वास्तव में वह अक्खरनाथ योगी था।

असली राजा कदमराव तोता बनकर उड़ता फिरता रहा। ऐसी स्थिति में उसकी दृष्टि अपने मंत्री पदमराव पर पड़ी। पदमराव को उसने अपना परिचय दिया। योगी के छल कपट की कहानी सुनाई।

अब पदमराव रात की अंधेरी में लुके-छिपे योगी राजा के पास गया और उसके पैरों की अँगुली में काट लिया। विष के फैलने से अक्खोरनाथ की आत्मा राजा के शरीर को छोड गई। तुरंत राजा कदमराव ने अपने शरीर को देखा।

'परकाय प्रवेश विद्या' के द्वारा कदमराव ने तोते के शरीर को छोड़कर अपने शरीर में प्रवेश कर लिया। कदमराव ने जब यह बात सुनी कि योगी

राजा चैन से गद्दी पर बैठ न सका और न रानी से मिला, बहुत प्रसन्न हुआ। आनन्द और उल्लास में राजा ने प्रजा को दान देने की आज्ञा दी। इस प्रकार निरन्तर छः मास तक आनन्द मनाए।

काव्य की विशेषताएँ :

'मसनवी कदमराव पदमराव' के कथानक के विश्लेषण से यह तथ्य सामने आता है कि इस आख्यानक काव्य में कविवर निज़ामी ने अनेक लोकोपयोगी बातें व्यक्त की हैं। जब राजा कदमराव अक्खोरनाथ योगी के सम्पर्क में आता है तब उसके जीवन में अनेक चमत्कारपूर्ण बातें घटित होती हैं जिनका वर्णन ही इस काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य है। काव्यारम्भ में वर्णित नाग की कथा आदि पातिव्रत्य की महत्ता को प्रतिपादित करने केलिए ही प्रस्तुत की गई है।

निज़ामी ने जो लोकोपकारी बातें कही हैं वे आज के सामाजिक सन्दर्भ में भी सार्थक लगती हैं। कवि का यह कहना कितना सच्चा है कि राजा का योगियों के सम्पर्क में आने से राज काज से ध्यान हट जाता है और यह सम्पर्क उसके पतन का कारण बन जाता है। जब राजा कदमराव ने योगी से सम्बन्ध स्थापित करने की इच्छा प्रकट की तब उसके मंत्री पदमराव ने उसे समझाया—

जगत्तर भवंदा न हंकार पास,
कि तुरत आस दे भवंद कर जाए न्हास। (२९२)

पदमराव ने राजा कदमराव से विनय की—

न कर राव तूं गरव, मुंज बोल सुन,
कि यह कूड बानी धरे भोत गुन। (३०८)

मंत्री ने राजा को समझाया कि प्रशासन का क्षेत्र बहुत ही जटिल है, रहस्यपूर्ण है—

बहुत भेद का लोक है राज काज,
बहुत कातराकी धरे काज राज (३१०)

योगी पर विश्वास रखना पदमराव की राय में खतरे से खाली नहीं है। अत: उसने राजा को स्पष्ट ही यह उपदेश दिया—

न नीडे अपस आन जग कापडी,
न पत्याव जोगी तडो तापडी। (३१९)

क्योंकि—

न जोगी रहे जरम सदमास वाज,
न रखडे तिसे कोए कनक आस वाज। (३२०)

अंत में उसने कहा कि योगी के साथ सम्बन्ध जोडने से हानि ही हो सकती है।

किन्तु राजा कदमराव ने पदमराव के उपदेश का तिरस्कार किया। उसने मछंदर के पुत्र अक्खोरनाथ को अपने महल में रहने दिया। उससे धनुर्विद्या, अमरविद्या, परकाय प्रवेशविद्या आदि सीख ली। अंत में परकाय प्रवेश की विद्या दिखाते हुए उसे अपने शरीर को नष्ट कर तोते के शरीर में रहना पड़ा। इस प्रकार कदमराव राज पद खोकर फिरता रहा। आखिर बड़े कष्ट सहन कर मंत्री पदमराव की मदद से राजा कदमराव को अपना शरीर वापस मिला। यही इस आख्यानक काव्य की प्रमुख कथा है।

सांस्कृतिक समन्वय

यद्यपि कथा के क्रमबद्ध विकास में व्यवधान हैं तथापि इसका महत्व कुछ कम नहीं है। इसमें जो नैतिक बातें व्यक्त की गई हैं वे तत्कालीन सामाजिक जीवन की मान्यताओं का परिचय देती हैं। इस काव्य को सर्वाधिक महत्व देनेवाला तत्व कवि का समन्वयात्मक दृष्टिकोण है। कविवर निज़ामी सांस्कृतिक समन्वय के अग्रदूत थे। यह सांस्कृतिक सामंजस्य दो स्तरों पर हुआ है—एक भाव के स्तर पर और दो भाषा के स्तर पर। भाषा के क्षेत्र में जो समन्वय और सामंजस्य के प्रयास दिखाई देते हैं उनके स्पष्ट प्रमाण हैं इस काव्य की शब्दावली। इसमें प्रयुक्त संस्कृत तत्सम शब्द फख्रुद्दीन निज़ामी की भारतीय परम्परा के प्रति गहरी आस्था प्रकट करती है जिसकी चर्चा भाषिक विशिष्टताओं के अन्तर्गत विस्तार सी की जाएगी।

भाव के क्षेत्र में निज़ामी ने सामासिक संस्कृति की अभिव्यंजना केलिए जो प्रशंसनीय श्रम किया है वह उस युग की दृष्टि से ही क्या आज की दृष्टि से भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय के अद्भुत उदाहरणों में सर्वप्रथम काव्य नाम को लिया जा सकता है। तत्पश्चात् कवि के शब्द-चयन को लिया जा सकता है। ईशस्तुति के अन्तर्गत दक्खिनी के कवियों ने ही नहीं बल्कि मलिक मुहम्मद जायसी जैसे कवियों ने भी जहाँ अल्लाह, खुदा आदि शब्दों का प्रयोग किया है वहाँ निज़ामी ने 'गुसाईं', 'करतार' आदि शब्दों का प्रयोग करके भारतीय परम्परा के प्रति मोह दिखाया है। कवि ने केवल एक ही स्थान पर 'खुदा' शब्द का प्रयोग किया है! वैसे ही पैगम्बर मुहम्मद केलिए 'रावत' शब्द का प्रयोग, अली को 'खड्गराव' कहना आदि भारतीय परिवेश में उन्हें चित्रित करने का प्रयास है जो कि प्रशंसनीय है।

मुसलमान केवल दो जगत् पर विश्वास करते हैं—एक इस पृथ्वी पर और दो उस जगत् पर जहाँ आदमी मृत्यु के बाद पहुँचता है, जिसे परलोक या 'आखिरत' कहते हैं। पाताल की कल्पना हिन्दू विचारधारा के बिलकुल अनुरूप है। कविवर निज़ामी दकनी ने पाताल का उल्लेख करके हिन्दू विचारधारा के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है।

जैसे—

आकास ऊँच पाताल धरती तुहीं (२)

वैसे ही चौदह लोकों की कल्पना भी भारतीय परम्परा का परिचायक है। यथा—

धरत सात रूचंद आकाश सात (८)

किन्तु, तत्त्वों को गिनते समय पंचतत्त्व के बदले केवल चार तत्त्वों का नाम लेकर कवि ने इस्लामी विचार को अभिव्यंजित किया है—

न पाथर न माटी न पानी न और (१७)

पवन आग माटी अधिक धात चार (१८)

भारतीयता के प्रति कवि की गहरी आस्था:

अपने काव्य के पात्रों के नामकरण में भी कवि ने भारतीयता का निर्वाह किया है। दक्खिनी के परवर्ती कवियों ने प्राय: अपने काव्य के पात्रों का नाम

या तो ईरानी रक्खा है या अरबी। यहाँ कवि ने अपने पात्रों को कदमराव, पदमराव, मधरबुध, अक्खोरनाथ आदि नाम देकर भारतीय नामों को स्वीकार किया है।

कथानक का विवेचन करने पर हमें यह विदित होता है कि 'परकाय प्रवेश' की कथा भारतीय पौराणिक आख्यानों में मिलती है। 'परकाय प्रवेश' की कथा ग्रीक साहित्य में भी पायीं जाती है। अक्खोरनाथ योगी और उसके चमत्कारपूर्ण कार्य आदि अनेक बातों के वर्णन में कवि ने भारतीय आख्यानों को आधार बनाया है।

'परकाय प्रवेश की विद्या' का वर्णन अवधी सूफ़ी साहित्य में मिलता है। मंझन की 'मधुमालती' की कथा को अपने ढंग में प्रस्तुत करनेवाले दक्खिनी के महाकवि नुस्रती ने अपने प्रेमाख्यान काव्य 'गुलशने इश्क़' में 'परकाय प्रवेश' का वर्णन किया है।

जब राजा कदमराव 'परकाय प्रवेश' की कला सीखता है तब महल के 'मंतर कलस' का टूट जाना बताया जाता है। इसे 'अवसगुन' बताया जाता है जो हमारे देश की परम्परा के अनुकूल है। प्रस्तुत प्रसंग द्रष्टव्य है—

> अखरनात मंतर सिखाया रहस,
> यकायक पड्या टूट मंदिर कलस। (४७३)
>
> जनाए बहुत अवसगुन राव कूँ,
> न पूछ्या किसे, राव उस भाव कूँ। (४७४)

आनन्द और उल्लास के अवसर पर अपने परिजनों और सेवकों को ही नहीं वरन् अपनी प्रजा को भी वस्त्र आदि उपहार भेंट करना भारतीय राजाओं की परम्परा रही है। प्राचीन कथाओं में पशु-पक्षियों को मनुष्य की तरह बातें करते तथा उन्हें मनुष्य के साथ भी बातें करते चित्रित किया गया है। इस प्रकार पशु-पक्षियों की सहायता से काम चलाना और पशु-पक्षियों का भी मनुष्य के रूप में बदलना आदि घटनाएँ प्राचीन साहित्य में मिलती हैं। प्रस्तुत मसनवी का मंत्री पदमराव नागराज बासुक है। वह जब चाहता है तब नाग के रूप में बदल जाता है। काव्य के आरंभ में राजा कदमराव के सिरहाने बैठकर उसे काटने का विचार

रखनेवाला पदमराव का उल्लेख मिलता है। वही पदमराव अंत में योगी को काट मारकर राजा कदमराव को अपना शरीर पुन: प्राप्त करने में सहायता पहुँचाता है। जब नागराज बासुक (पदमराव) ने योगी राजा को काटा तब कदमराव ने तोते का शरीर छोड़कर अपने पुराने और असली शरीर को पा लिया। पशु-पक्षियों को मनुष्य की तरह चित्रित करते हुए जो कथाएँ प्रचलित हुई हैं उनमें भारतीय भी हैं और अभारतीय भी। किन्तु, प्रस्तुत आख्यानक काव्य में वर्णित बासुक या पदमराव का सम्बन्ध भारतीय पौराणिक कथाओं से है।

धार्मिक पात्रों के प्रति समदृष्टि :

'मसनवी कदमराव पदमराव' में ऐसे पात्रों का उल्लेख आदर के साथ किया गया है जो भारतीय साहित्य में आदरणीय स्थान रखते हैं। उदाहरण केलिए श्रीराम, हनुमान, लक्ष्मण, पंच पांडव आदि के नाम श्रद्धा के साथ लिये गए हैं। वैसे हज़रत मुहम्मद के चार मीत, अरब के प्रसिद्ध दानवीर हातम ताई, क़ुरआन में वर्णित नूह, अय्यूब आदि पैगम्बरों के नाम भी लिये गए हैं।

दुष्ट पात्र के रूप में रावण, क़ारून आदि व्यक्तियों के उल्लेख में भी हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति का मिला-जुला रूप प्रकट होता है। इस प्रकार निज़ामी दकनी सामासिक संस्कृति के उन्नायक एवं भारतीय परम्परा के प्रति श्रद्धालु व्यक्ति के रूप में हमारे सामने प्रत्यक्ष होता है।

नैतिक उपदेश और लोकोक्तियां :

प्रस्तुत काव्य में जीवन का जो स्पन्दन सुनाई पड़ता है वह उस सन्दर्भ में अधिक मुखरित हुआ है जब कवि लोकोक्ति के द्वारा अपना विचार प्रकट करता है। 'बचन' या कविता के महत्व का वर्णन देखिए—

> रतन थीं अधिक तैं किया मुख बचन,
> बचन मुख तल तैं किया जग रतन। (२१)

कवि के नैतिक विचार को समझने केलिए निम्नलिखित कतिपय पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

१. सोच विचार कर औचित्य के साथ नपे-तुले शब्दों मे बात करने का उपदेश

निम्नलिखित द्विपदी में मिलता है—

> असंगत बहुत बोल न देक बोल,
> प्राप्त सब्द की सब बार देक तोल। (७५)

२. अछाई को ग्रहण करने तथा बुराई को छोड़ने की बात इस प्रकार व्यक्त की गई है—

> भला देख संभल बुरा देख छांड,
> कि फतर फूल फल होए थी कांट कांट (९०)

३. जो अन्य स्त्री के संग रहता है उसे सबसे बुरा बताया गया है—

> दुनिया में बुरा काम परनार संग,
> कि उस थीं बुरा कुच्च ना है कुंढग। (१००)

४. जो पर-स्त्री को माँ और बहन समझता है उसका नाम दोनों जगत् में चमक उठेगा—

> उजगर दहूं जग्ग सू होए जिन,
> जू परनार देखत कहै माई-बहन। (१०१)

इसी आशय की एक अन्य द्विपदी भी द्रष्टव्य है—

> सोई फख़्रुदीं कौन दिया दे जस?
> जू परनार सूधन कहावे अपस। (१०२)

कबीर की तरह कल के काम को आज ही करने का उपदेश निम्नलिखित पंक्तियों में मिलता है—

> जू कुज काल करना सू तूं आज कर,
> न घाल आज का काम तूं काल पर। (१२२)

संसार की अस्थिरता को देखकर निज़ामी कहते हैं—

> दुनिया झूट है, जीवना झूंट जान,
> न कर जीव गदला न नीर आंख इस आन। (१४३)

अपने मत के समर्थन केलिए निज़ामी ने लोकोक्तियों का सहारा लिया है। एक ही बात को विभिन्न लोकोक्तियों के द्वारा प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। निम्नलिखित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

छुरी सोने की होने पर भी उसे पेट में कोई नहीं मार लेता—

छुरी अत कुंदन सी कि जे होए,
असंगत न तिस घाल ले पेट कोए। (१७०)

साँप का डसा रस्सी से भी डरता है—

धधा सांप का होए जे कावडी,
डरे क्यूं न वह देख फांदा पडी। (१७१)

दूध का जला छाछ को भी फूंक मार मार कर पीता है—

बडे साच कहकर गए बोल अचूक,
धधा दूद का छाचहा पीवे फूक। (१७२)

कुत्ते की दुम कभी सीधी नहीं होती—

जंतर घाल छम्मास खींचे जु कोए,
न सीधी कधीं कूतरी पूँच होए। (१९७)

शकर और दूध देकर पालने पर भी नींबू मीठा नहीं होता—

शकर दूद नित घाल पाले जे कोई,
बक़ायन सहंद नीब मीठा न होए। (१९९)

मधुर कभी खट्टा नहीं होता और खट्टा कभी मधुर नहीं होता—

मधुर न खत्तर होए खत्तर न मधुर,
मधुर सू मधुर होए खत्तर सू खत्तर। (२०३)

सब पत्थर एक मोल का नहीं होता—

सभीं (बा) फत्तरन होए जे एक मोल,
रतन कोई न मोल ले गांट खोल। (२०५)

अपना खुश तो सारा जहां खुश—

सुखी आपना जीव तो सब जहां (२१४)

तलवार का घाव भर जाता है मगर जबान का घाव भरता नहीं—

खड्ग मार्‌या ऊपरी के मरे,
सब्द मार्‌या जरम तप्या करे। (८६६)

लोकोक्तियों के अन्य अनेक उदाहरण उद्‌धृत किए जा सकते हैं। अब निज़ामी ने नीति सम्बन्धी जो बातें कही हैं, उन पर विचार करेंगे। रहीम, वृन्द आदि की भाँति निज़ामी की नैतिक बातें सामाजिक जीवन की सत्यता की ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करती हैं। यथा—
रत्न परखा जा सकता है मगर मनुष्य नहीं—

रतन परख्या जाए मानुस न जाए। (१८५)

टूटा हुआ मन कभी जुड़ता नहीं—

भगे हत कूं कांप सूं बांद जे,
भगे मन्न कूं बुध कवन सांद जे। (२२३)

मन किसी से विरक्त हुआ हो तो फिर उससे नहीं लगता—

वले मन किसी का जे भागे कहीं,
असंगत कि वह मत लगे भी नहीं। (२२२)

छोटे की बुद्धि छोटी होती है चाहे पैगम्बर का पुत्र ही क्यों न हो—

नन्हे की नन्ही बुध माने न कोए,
नन्हां सू नन्हां जे नबी पूत होए।

हमें अपने किए का फल भोगना पड़ेगा—

भला कर जू तूं भी भलाई लहै,
कि जम जम भलाई कफा तुज रहै। (२१८)

बुरा जू करे सू बुराई लहै। (१९६)

रूप और सौन्दर्य से बढ़कर स्वभाव को महत्त्व देने का उपदेश देते हैं—

न कर दिष्ट सिंगार पर रूप पर,
करें दिष्ट काम पर अंग पर। (२११)

पापी की निन्दा, सत्य का आग्रह, पातिव्रत्य की प्रशंसा, शराब से बचे रहने का उपदेश आदि अनेक बातें व्यक्त की गई हैं।

जो मूर्ख है वह बात समझेगा नहीं, जैसे पिंजरे से पवन और छलनी में से पानी निकल जाता है वैसे मूर्ख के मन से बातें निकल जाती हैं—

गंवारन करे कन में बुध क्यू,
पवन पिंजरे, हांक में नीर ज्यूं। (२६५)

आधुनिक समाज में स्वार्थ साधने वाले ही बहुत मिलते हैं। आधुनिक मानव अपनी बुद्धि का उपयोग भी स्वार्थ सिद्धि केलिए करते हैं। निज़ामी के युग में भी आज की तरह स्वार्थ को जीवन लक्ष्य मानकर चलने वाले रहते थे। उनकी ओर इशारा करते हुए कविवर निज़ामी कहते हैं—

अयानां कि जे होए परकाम कोए,
सयानां वही कोई काम आप होए। (५४३)

चमत्कारों के प्रति श्रद्धा रखनेवाले पुराने काल की तरह आज भी मिलते हैं। योगियों के चमत्कार से मुग्ध होकर उनके सम्पर्क में रहने वाले राजनीतिक नेता आज के वैज्ञानिक युग में भी मिलते हैं। योगियों के सम्पर्क से दोष ही होता है। उनसे बचे रहने का उपदेश देते हैं। कवि ने ऐसे योगी के चमत्कार में फँस कर गद्दी नष्ट करनेवाले राजा की कहानी ही कही है।

बिधि-विधान पर आस्था, पाप का फल नरक आदि बातें भी बताई गई हैं।

कविता की परिभाषा—

कविता को निज़ामी श्लेष युक्त मानते हैं। उनका कहना है—

दो आरत सबद जिस कवित में न होए,
दो आरत सबद बाज रीझे न कोए। (३९८)

अनुचित बात शूल की तरह सताती है—

असंगत सबद मुंज हिएं यूं सले,
न तिनका सले आंक में त्यूं सले। (५५६)

कविवर निज़ामी का कहना है कि जो मेरी बात सुनेगा, मानेगा उसी को ही अपनी बात सुनाऊँगा। जो नहीं सुनेगा उसके पास पल भर केलिए भी मैं नहीं रहूँगा—

कि जे बोल मेरा सुने तिस कहूं,
कि जे न सुने तिस घडी न रहूं। (६५४)

निज़ामी यह भी बताते हैं कि काव्य केलिए श्रोता हो तो कवि की वाणी उत्तम हो जाती है और जो उत्तम वाणी कहता है वह श्रोता का मित्र हो जाता है—

निज़ामी कहनहार जिस यार होए,
सुननहार सुन नरज़ गुफ्तार होए। (२९)

कविवर निज़ामी ने कुछ ऐसी बातें कही हैं जो मानव की सहजात प्रवृत्ति है। जिसको पल भर केलिए दुख का अनुभव होता है वह जिन्दगी भर का सुख भूल जाता है। वैसे पल भर के सुख से सौ वर्ष का दुख भी भूल जाता है—

पडे अवचिता मत तिल एक दुख,
बिसर जाए तिस तिल जरम आप सुख। (७६५)

जिसे एक तिल होए अदमाद सुख,
तिसी तिल बिसर जाए सौ बरस दुख। (७६४)

जो अपनी बुद्धि से काम नहीं लेता, दूसरों की बात मानकर चलता है उसे धोखा खाना पड़ता है—

जू परबोध सुनकर करे कूढ बुध,
तिसे कौन न दिए दे परकूढ बुध। (७४२)

जू चाल आपनी छोड़ पर चाल जाए,
असंगत कि परचाल मंह ठेंस खाए। (७४३)

जो विनम्र होकर सीधा चलता है उसके सिर पर दुनिया चढ़ती है—

जू सीधा चले कोई चुक सर नवाव,
जलावे सती क्यूं न जग सर चढाव। (८९०)

निजामी पूछते हैं कि जो दूसरों का दुख बाँट लेता नहीं वह कैसे सुखी रह सकता है—

जू परदुक्ख ना ले सके एक चुक,
तिसे लोक मिल रह सके कित्त सुख। (७२९)

इस प्रकार फख्रुद्दीन निज़ामी ने अपनी मसनवी 'कदमराव पदमराव' में एक भारतीय आख्यान को चित्रित किया है। प्रस्तुत काव्य का मूल्यांकन करते समय हमें तत्कालीन समाज और जीवन को दृष्टि में रखना चाहिए। पन्द्रहवीं शताब्दी का उत्तर भारतीय समाज धार्मिक कट्टरता और मज़हबी झगडों के कारण बहुत ही बुरी स्थिति में था। ऐसे ही समय वहाँ संत कबीर जैसे कवि अपने समाज सुधारक दृष्टिकोण से काव्य कर रहे थे। दक्षिण में यद्यपि उत्तर की जैसी घोर अशान्ति नहीं थी तथापि यहाँ भी धार्मिक अत्याचार और अन्धविश्वास में जन जकडे हुए थे। कवि पर अपने समाज के जीवन का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। उन दिनों सामाजिक सुधार कविता का लक्ष्य होता था। समाज का नैतिक स्तर ऊँचा रखना भी कवि का उद्देश्य था। नैतिक पतन को कवि सहन नहीं कर सकता था। इसलिए पग पग पर कवि जनता को नैतिक दृष्टि से जागृत करने केलिए उपदेश देता रहता है। काव्य में प्रस्तुत कथा के द्वारा नीति सम्बन्धी बातों से जनता को अवगत करना ही कवि का लक्ष्य होता था। युग की इन परिस्थितियों का प्रभाव निजामी के काव्य पर खूब पड़ा है। मसनवी 'कदमराव पदमराव' का युगीन संदर्भ में बड़ा महत्त्व है।

प्रस्तुत काव्य में सारी बातें सीधे सादे ढंग में कही गई हैं। भाषा के पुराने रूप के कारण कहीं-कहीं ऐसी क्लिष्टता उत्पन्न हो जाती है कि बात समझ में नहीं आती। प्रस्तुत आख्यान काव्य का सबसे बड़ा महत्त्क यह है

कि कविवर निज़ामी ने भारतीय संस्कृति के प्रति अपनी आस्था प्रकट की है और भारतीय परम्परा का सर्वथा सफल निर्वाह किया है। भाव के क्षेत्र में अपने पैतृक और परम्परा के प्रति कवि ने जो आग्रह प्रकट किया है वह भाषा के क्षेत्र में भी दिखाई देता है। ऐसा लगता है कि कविवर निज़ामी को संस्कृत का भी अच्छा ज्ञान था। भाषा के क्षेत्र में उनके समन्वयात्मक दृष्टिकोण का परिचय आगे भाषिक विवेचन के अन्तर्गत दिया जाएगा। □

३. आधुनिक हिन्दी का आदिकाव्य: भाषिक विवेचन

दक्खिनी हिन्दी खड़ीबोली का पूर्ववर्ती रूप है जिसे हिन्दी भाषी ही नहीं बल्कि उर्दू भाषी भी अपनी विरासत समझते हैं। दक्खिनी हिन्दी का विकास बारहवीं-तेरहवीं शतियों की उस हिन्दी से हुआ जो दिल्ली और समीपवर्ती प्रदेशों में व्यवहृत होती थी और जिसमें संस्कृत, अपभ्रंश, हरियाणी, पंजाबी, राजस्थानी, सिंधी आदि अनेक भाषाओं के तत्त्व वर्तमान हैं। नव्य भारतीय आर्यभाषाओं की प्रारम्भिक अवस्था का स्वरूप दक्खिनी प्रदान करती है। अनेक भाषाओं के सम्मिलित प्रभावों से युक्त दक्खिनी ने अपने जन्मस्थान से दूर दक्षिण के नवीन वातावरण में कैसे अपना रूप निश्चित किया इसका सही ज्ञान प्राप्त करने केलिए दक्खिनी का साहित्य ठोस सामग्री प्रदान करता है।

दक्खिनी का मूल रूप खड़ीबोली है। दक्खिनी पर हरियाणी, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं के प्रभाव की बात करते समय हमें इस बात को मन में रखना चाहिए कि उपर्युक्त कोई भी भाषा उस युग में इतनी शक्ति नहीं रखती थी कि वह किसी अन्य भाषा पर अपना प्रभाव डाल सके। अतः प्रभाव की बात से हमें यह समझ लेना चाहिए कि दक्खिनी का उदयकाल अन्य भाषाओं का भी उदयकाल रहा जिसके कारण अन्य भाषाओं के तत्त्व भी दक्खिनी में पर्याप्त मात्रा में आ गए। धीरे-धीरे उत्तर की भाषाएँ अपने पृथक् अस्तित्व एवं व्यक्तित्व से सम्पन्न होती गईं। किन्तु भौगोलिक दूरी के कारण दक्खिनी अपने मिले जुले रूप से अपने को मुक्त न कर सकी। दक्खिन

की क्षेत्रीय भाषाओं के सम्पर्क से दक्खिनी अपने मूल रूप से कुछ और परिवर्तित हो गई। यदि दक्खिनी को दक्खिन की क्षेत्रीय भाषाओं के प्रभावों से मुक्त कर दिया जाए तो आप देखेंगे कि भाषा का यही रूप उत्तर भारत में उन दिनों प्रयुक्त होता था। भाषा का यह मिला-जुला रूप उत्तर में कबीर की वाणी में मिलता है। यह उल्लेखनीय बात है कि कबीर की भाषा में जो तत्त्व पाए जाते हैं, रूपों और शब्दों में जो विशिष्ट गुण मिलते हैं वे विशिष्ट गुण दक्खिनी के आदिकालीन ग्रन्थों में भी पाए जाते हैं। इसलिए यह विचार सही नहीं प्रतीत होता कि कबीर की वाणी में भिन्न भाषाओं का प्रभाव कवि के घुमक्कड़ स्वभाव के कारण हुआ है। वस्तुतः उस युग की भाषा में अनेक भाषाओं का सम्मिलित प्रभाव रहा है जिसका सबूत हमें कबीर के ग्रन्थों के अतिरिक्त अब्दुल कुद्दूस गंगोहीकृत 'रुश्दनामा' और तत्कालीन अन्य ग्रन्थों एवं दक्खिनी के प्रारम्भकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होता है।

दक्खिनी में कबीर की भाषा की तरह उत्तर की विभिन्न बोलियों के तत्त्व मौजूद हैं। साथ ही दक्खिन की गुजराती, मराठी आदि आर्य परिवार की भाषाओं का गहरा प्रभाव भी पाया जाता है। गुजराती और मराठी का प्रभाव तो बड़ा ही गंभीर और व्यापक रहा है। इन भाषाओं से गृहीत तत्त्वों को दक्खिनी ने अपने में यों पचा लिया है कि वे उसके अपने ही परिचायक तत्त्व या लक्षण-से हो गए हैं। बाद में दक्खिनी जब दक्खिन की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर समूचे दक्षिण भारत में व्याप्त हो गई तब उस पर तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहा।

दक्खिनी की विशिष्टताओं का विश्लेषण करने से पूर्व इस बात पर विचार करना अपेक्षित है कि क्या दक्खिनी उर्दू का पूर्वरूप है या हिन्दी का? यहाँ इस बात का स्मरण करना चाहिए कि भाषा वैज्ञानिकों ने उर्दू को हिन्दी का अविच्छिन्न रूप माना है। हिन्दी-उर्दू का सबसे बड़ा अंतर यह है कि हिन्दी नागराक्षरों में लिखी जाती है और उर्दू अरबी-फारसी लिपि में। फिर दोनों भिन्न इसमें है कि जहाँ हिन्दी में संस्कृत शब्द व्यवहृत किए जाते हैं वहाँ उर्दू में अरबी-फारसी अलफाजों का ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है। आधुनिक काल में हिन्दी-उर्दू में जो अंतर पाया जाता है वह दोनों भाषाओं के साहित्य में प्रकट होता है। जहाँ तक बोलचाल की भाषा का रूप है दोनों बहुत निकट पड़ती हैं, प्रायः दोनों एक ही हैं।

मज़हब के नाम पर भाषा का सम्बन्ध जोड़ा नहीं जा सकता। यह तो सब जानते हैं कि हिन्दी साहित्य के निर्माता अकेले हिन्दू ही नहीं हैं और न उर्दू के पोषक अकेले मुसलमान ही। दोनों भाषाओं के प्रतिभावान साहित्यकार किसी एक धर्म के नहीं रहे और न रहेंगे।

दक्खिनी हिन्दी के आदिकालीन ग्रन्थों का अवलोकन करें तो आप देखेंगे कि इनमें संस्कृत तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों का अधिक प्रयोग किया गया है। जिस 'मसनवी कदमराव पदमराव' को 'उर्दू की पहली तसनीफ़' बताकर उर्दू के साहित्यिक इतिहास में स्थान दिया गया है उसमें प्रयुक्त कुल बारह सहस्र शब्दों में दस सहस्र शब्द संस्कृतमूलक हैं, बाकी दो सौ के करीब अलफाज़ ही अरबी-फ़ारसी के हैं। यदि इस ग्रन्थ को उर्दू का प्रथम ग्रन्थ माना जाय तो इस बात में मत भेद नहीं हो सकता कि उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है, जो पहले संस्कृत शब्दों से अनुप्राणित थी। बाद में अरबी-फ़ारसी शब्दावली के अधिक प्रयोग से उर्दू का उदय हुआ। यह भी मानना पड़ेगा कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी की हिन्दी चाहे उत्तर की हो या दक्षिण की लगभग एक जैसी ही रही है। इस काल में हिन्दी-उर्दू की पृथक्ता को लेकर कोई विशेष विचार उत्पन्न नहीं हुआ। जहाँ तक दक्खिन में उर्दू के प्रारम्भ का प्रश्न है वली दकनी के काल तक दक्खिनी अपने मूल रूप से अर्थात् हिन्दी से अपना अटूट सम्बन्ध बनाये रखती आई। दक्खिनी में उर्दू का मूल उत्स ढूँढनेवाले भी इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि वली दकनी के समय तक हिन्दी-उर्दू नाम से दो समान्तर शैलियाँ उत्पन्न नहीं हुईं थीं।

दक्खिनी हिन्दी का प्रारम्भ वरिष्ठ सूफ़ी आचार्य ख्वाज़ा बन्देनवाज़ गेसूदराज़ से माना जाता था और 'मेराजुल आशिकीन' को बन्देनवाजकृत बताया जाता था। किन्तु अब यह धारणा निर्मूल सिद्ध हुई है। 'मेराजुल आशिक़ीन' के रचयिता ख्वाजा बन्देनवाज़ नहीं है।

आधुनिक हिन्दी का प्रथम ग्रन्थ फख्रुदीन निजामीकृत 'मसनवी कदमराव पदमराव' है, जिसका रचनाकाल सन् १४२१—१४३५ ई. के बीच में माना जाता है। इस आख्यानक काव्य की भाषा के अध्ययन से यह तथ्य सामने आता है कि यह भाषा वही हिन्दी है जो पन्द्रहवीं शती में उत्तर भारत में प्रयुक्त होती थी। यह 'क़दीम उर्दू' नहीं है। इस ग्रन्थ की भाषा में जहाँ एक ओर उर्दू से भिन्न अपने अस्तित्व को सिद्ध करनेवाले अनेक तत्त्व मिलते हैं

वहाँ दूसरी ओर हिन्दी से अपने सम्बन्ध को स्पष्ट घोषित करनेवाले असंख्य तत्त्व भी मिलते हैं। लिपि को छोड़कर कोई अन्य तत्त्व ऐसा नहीं मिलता जो इस ग्रन्थ की भाषा को उर्दू से जोड़ता हो। जैसे अवधी केलिए अरबी-फारसी लिपि का प्रयोग सूफ़ी कवियों द्वारा किया गया वैसे दक्खिनी के कवियों ने अपनी हिन्दी केलिए अरबी-फारसी लिपि का प्रयोग किया।

यह उल्लेखनीय बात है कि दक्खिनी के किसी एक कवि ने अपनी भाषा को उर्दू नाम से नहीं पुकारा। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी, गूजरी आदि नामों का प्रयोग करने पर भी अपनी भाषा केलिए उर्दू शब्द का उपयोग कहीं नहीं किया। फिर भी लिपि एवं कुछ समान तत्त्वों को देखकर दक्खिनी के सारे साहित्य को उर्दूवालों ने अपनी सम्पत्ति मानकर उर्दू के साहित्यिक इतिहास में स्थान दिया है। यह सत्य है कि हिन्दी के कतिपय विद्वानों ने दक्खिनी को हिन्दी का अभिन्न अंग बताया है। किन्तु आज भी हिन्दी के साहित्यिक इतिहास की मुख्यधारा में दक्खिनी को समाविष्ट करके समग्र रूप से हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन नहीं किया गया है।

विद्वानों ने दक्खिनी के अनेक गद्य-पद्य ग्रन्थों की भाषा की विवेचना करके यह सिद्ध किया है कि दक्खिनी हिन्दी खड़ीबोली का दक्खिन में विकसित रूप है। किन्तु खड़ीबोली के सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक प्राचीन प्रामाणिक ग्रन्थ 'मसनवी कदमराव पदमराव' के अनुपलब्ध रहने के कारण उसे अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया। इसलिए आधुनिक हिन्दी के आदि रूप को अब तक प्रकाश में नहीं लाया जा सका। उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जमील जालिबी ने 'मसनवी कदमराव पदमराव' को प्रकाशित किया है। अतः पन्द्रहवीं शती की हिन्दी का स्वरूप स्पष्ट करने केलिए प्रस्तुत ग्रन्थ की भाषा का विश्लेषण अनिवार्य है।

दक्खिनी हिन्दी के सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रन्थ के रूप में फख्रुद्दीन निज़ामी-कृत 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा का बड़ा महत्त्व है। इस ग्रन्थ की आधार भाषा खड़ीबोली और हरियाणी है और पन्द्रहवीं शती की सारी भाषिक विशिष्टताएँ इसमें मौजूद हैं। इसका रचनाकाल सन् १४२१ ई. और १४३५ ई. के बीच माना जाता है। इस काल में खड़ीबोली में कोई ऐसा आख्यानक काव्य निर्मित नहीं हुआ है जो भाषा के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करता हो। इस दृष्टि से इस काव्य का महत्त्व सर्वोपरि है। इसमें आधुनिक हिन्दी का स्रोत पाया जाता है। अब हम इसकी भाषिक विशिष्टताओं का विवेचन करेंगे।

'मसनवी कदमराव पदमराव' में हिन्दी की बोलियों के साथ-साथ मराठी, गुजराती, पंजाबी, सिंधी, राजस्थानी आदि बहुत-सी भाषाओं का गंभीर प्रभाव देखा जा सकता है। डॉ. जमील जालिबी ने प्रस्तुत मसनवी की भूमिका में लिखा है, "पंजाबी, सिंधी, खड़ी, राजस्थानी, ब्रजी और गुजराती बोलनेवालों को अलग-अलग इस मसनवी के अशआर पढ़कर सुनाए तो उन्होंने जहाँ और कई बातें कहीं वहाँ यह बात मुश्तरिक थी कि यह जबान उनकी अपनी ज़बान से करीब है और आज भी इसके बहुत-से अल्फ़ाज़ उनके घरों में बोले जाते हैं।"[1]

निज़ामी दकनी ने एक से अधिक ग्रन्थ लिखा है या नहीं, इसका हमें ज्ञान नहीं है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में शब्दों की दृष्टि से संस्कृत, अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी सिंधी, मराठी, गुजराती, तेलुगु आदि भारतीय भाषाओं के साथ-साथ अरबी-फ़ारसी आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी हैं। यह उल्लेखनीय बात है कि आधुनिक खड़ीबोली में संस्कृत शब्दों का जितना व्यापक प्रयोग किया जाता है उतना व्यापक प्रयोग इस काव्य-ग्रन्थ में भी किया गया है। यह हिन्दी के संस्कृतनिष्ठ स्वरूप का आदि ग्रन्थ भी कहा जा सकता है। कविवर निज़ामी ने केवल एक सौ पचास के लगभग शब्द ही अरबी फ़ारसी के प्रयुक्त किए हैं। यह महत्त्वपूर्ण बात है कि कतिपय अरबी-फ़ारसी शब्दों को हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुरूप देशी ढाँचे में ढाल दिया गया है। वैसे ही कई अरबी-फ़ारसी शब्दों का उत्तरार्द्ध हिन्दी कर दिया गया है। कुछ अरबी-फ़ारसी शब्द ऐसे अवश्य हैं, जो अपने असली रूप लिए हुए आए हैं।

शब्दावली की दृष्टि से प्रस्तुत काव्य में खड़ीबोली, हरियाणी, ब्रज, अवधी-राजस्थानी, पंजाबी, मराठी-गुजराती आदि से कई शब्द स्वीकृत हैं, जिनमें हरियाणी के शब्दों का आधिक्य है। एक ही वस्तु केलिए प्रयुक्त विभिन्न पर्यायवाची शब्दों में और शब्दों के विकृत रूपों में अनेक भाषाओं के सम्मिलित तत्त्व देखे जा सकते हैं। इस प्रकार अनेक भाषाओं के प्रभाव को देखकर यह अनुमान लगाना अनुचित नहीं जँचता कि उस समय हिन्दी की कोई भी बोली अपना पृथक् व्यक्तित्व एवं अस्तित्व प्राप्त नहीं कर चुकी थी। यह ऐसा समय रहा होगा जब हिन्दी की विविध बोलियाँ जन्म ले रही थीं। इसलिए उस समय भाषा का अधिक मिला-जुला रूप प्रचलित रहा होगा।

---

1. मसनवी कदमराव पदमराव, सं. डॉ. जमील जालिबी

उर्दूवालों ने 'मसनवी कदमराव पदमराव' को 'अपनी पहली तसनीफ़' बनाकर उसे अपने साहित्यक इतिहास में अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान दिया है। अतः यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि उर्दू के काव्य ग्रन्थ को हिन्दी के अन्तर्गत स्थान दिया जाना कहाँ तक उचित है। वैसे तो समूचे दक्खिनी साहित्य को उर्दूवालों ने अपनी विरासत समझकर अपनाया है। वास्तविकता यह है कि लिपि को छोड़कर बहुत कम तत्त्व हों ऐसे मिलेंगे जो दक्खिनी को उर्दू का पूर्ववर्ती रूप सिद्ध करते हों। पर हिन्दी ने उसका सम्बन्ध दृढ सूत्रों पर आधारित है। हम उन तत्त्वों का भी विश्लेषण करेंगे जो 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा का सम्बन्ध उर्दू से होने का भ्रम उत्पन्न करते हैं। जब हम प्रस्तुत मसनवी की भाषा का विवेचन करेंगे तब देखेंगे कि इसकी भाषा हिन्दी से ही सम्बन्ध रखती है और उर्दू से जो भी सम्बन्ध जोड़ा जाता है वह ठोस प्रमाणों पर अवलम्बित नहीं है।

सर्वप्रथम हम इस प्रश्न का उत्तर देंगे कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा को दक्खिनी क्यों कहते हैं? दक्खिनी की पहिचान के जो सामान्य तत्त्व हैं, वे इसमें पाए जाते हैं। दक्खिनी के प्रमुख आरंभकालीन सन्तों की भाषा की विशिष्टताएँ इस ग्रन्थ में भी पायी जाती हैं। प्रस्तुत मसनवी के भाषा वैज्ञानिक अध्ययन से यह तथ्य प्रकट होता है कि इसकी भाषा दक्खिनी है जो खड़ीबोली का आदिकालीन रूप है। विशद एवं विस्तृत विवेचन करने से पूर्व हम उन सामान्य तत्त्वों पर विचार करेंगे जो निज़ामी दकनी की भाषा को दक्खिनी सिद्ध करती है।

सामान्य तत्त्व:

१ दक्खिनी हिन्दी में उपलब्ध साहित्यिक ग्रन्थों में प्रयुक्त प्रायः सभी धातुएँ इस ग्रन्थ में मिलती हैं। कतिपय धातुएँ द्रष्टव्य हैं –

अंपडना, अपडना (पहुँचना, पाना) ये दोनों रूप मिलते हैं। अचना, अछना (रहना, होना) अडना, आखना (कहना), आनना (लाना), उचाना, उठना, काडना (काढ़ना), घालना (डालना, छोडना), चढ़ना, चडना, चिंतना, झांपना, ढूंडना, डिसना, दीठना, दिठना, धूंडना, न्हासना, पल्हाना, पेखना, बरजना, राखना, लागना, सटना, सरना, सांदना, सिरजना, सेवना (सेवा करना), हँकारना आदि आदि।

२) शब्दावली की दृष्टि से अधिकांश शब्द संस्कृतमूलक हैं, शेष शब्द गुजराती, मराठी, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, अरबी-फारसी आदि अनेक भाषाओं से ग्रहण किए गए हैं।

३) दक्खिनी में मराठी के अवधारणबोधक 'च' का प्रयोग किया जाता है, जिसके उदाहरण प्रस्तुत मसनवी में भी मिलते हैं।

४) नकारार्थक 'नको' का प्रयोग भी दक्खिनी की सहज प्रवृत्ति है। यह अव्यय भी इस ग्रन्थ में पाया जाता है।

५) समुच्चय बोधक अव्यय 'और' के अतिरिक्त 'होर' का प्रयोग भी मिलता है जो दक्खिनी की निजी विशेषता है।

६) यद्यपि लिंग निर्णय के किसी व्यवस्थित नियम का अनुसरण नहीं किया गया है, फिर भी अकारान्त पुल्लिंग शब्दों में 'आँ' लगाकर बहुवचन बनाने की प्रवृत्ति इस काव्य ग्रन्थ में भी पायी जाती है, जो दक्खिनी का एक चिह्न है।

७) हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों से प्रभावित तथा प्राप्त अव्यय 'बाज' का प्रयोग इस ग्रन्थ में काफी संख्या में पाया जाता है। यह भी दक्खिनी का एक विशिष्ट गुण है।

८) कर्तृवाचक शब्द 'हारा' 'हारे', 'हारी' आदि का प्रयोग भी पाया जाता है।

अन्य अनेक तत्त्व भी ऐसे हैं जो इस ग्रन्थ की भाषा को दक्खिनी का आरम्भकालीन रूप सिद्ध करते हैं। सामान्यत: उर्दू में संस्कृत शब्दों का प्रयोग बहुत कम और अरबी-फारसी शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। इसके विपरीत हिन्दी में अरबी–फारसी शब्दों का प्रयोग बहुत कम और संस्कृत शब्दों का प्रयोग अधिक होता है। इस दृष्टि से भी 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा हिन्दी से ही अधिक सम्बन्ध रखती है। दक्खिनी के महान साहित्यकार मुल्ला वजही के 'सबरस' की भाषा की विवेचना करते हुए डॉ. सुहेल बुख़ारी ने जो बातें बताई हैं, वे सारी बातें

'मसनवी कदमराव पदमराव' पर भी लागू होती हैं। इस मसनवी की भाषा भी उर्दू से बहुत दूर और खडीबोली से बहुत निकट की प्रतीत होती है।

दक्खिनी में हिन्दी की विविध बोलियों एवं अन्य भाषाओं के तत्त्व :

भाषावैज्ञानिकों ने दक्खिनी की आधार भाषा के रूप में खड़ीबोली का नाम लिया है। दिल्ली और समीपवर्ती प्रदेशों में व्यवहृत भाषा अर्थात् खड़ीबोली और हरियाणी ही दक्खिनी की मूल भाषा है, जिसके सुदृढ प्रमाण 'मसनवी कदमराव पदमराव' में उपलब्ध होते हैं। डॉ. मसूद हुसैन खाँ ने ठीक ही लिखा "क़दीम दकनी को अगर किसी बोली से निसवत हो सकती है तो वह दिल्ली के नवाह की दो बोलियाँ यानी खड़ी और हरियाणी हैं, जिनकी क़दामत पर शुबा करना तारीख़ी नज़र से सरासर गलत है। हमारे ख्याल में दकनी की तमाम उसूलियात नवाहे दिल्ली के हस्ब ज़ेल इज़लाह की बोलियों से की जा सकती हैं:

१) खड़ी के इज़लाह-मेरठ, मुज़फ्फर नगर, सहारनपुर

२) हरियाणी के इज़लाह-करनाल, रोहतक"[1]

यद्यपि दक्खिनी में अनेक भाषाओं के शब्द घुल मिल गए हैं तथापि हरियाणी से उसके अटूट सम्बन्ध को प्रकट करनेवाले अनेक तत्त्व साहित्यिक हिन्दी में वर्त्तमान हैं। दक्खिनी में व्यवहृत अनेक शब्द आज भी हरियाणी में व्यवहृत किए जाते हैं। दक्खिन में आए सैनिक, व्यापारी आदि मुख्यत: दिल्ली और समीपवर्ती प्रदेशों से ही आए होंगे। हरियाणी से अपने अविच्छिन्न सम्बन्ध को स्पष्ट करनेवाले कतिपय तत्त्व दक्खिनी की सर्वप्रथम काव्यकृति 'मसनवी कदमराव पदमराव' में पाये जाते हैं। हरियाणी में व्यवहृत निम्नांकित शब्द इस ग्रन्थ में द्रष्टव्य हैं:

१. कधीं = कभी
   डरूं न कधीं दुक्क जोबन बचाए (१९३)

२. गांडा = गन्ने का टुकड़ा
   हुआ इत्त मीठा जू गांडा अघर,
   न खाना तिसे जाए सब बैर चर। (८८)

---

१. प्रो. आले अहमद सरूर, अलीगढ़ तारीख ए अदब उर्दू पृ. ४२

३. घाल = डाल
न घाल आज का काम तूं काल पर (१२२)

४. तत्ता = गरम
न तत्ता कधीं खाऊं न जल मरूं (१९१)

५. थांब = स्तंभ
संबर कौन थंबे तेरा राज दल (२१६)

६. पत्याना = विश्वास करना
न अब थीं किसी नार पत्यावनां,
न पत्यावनां न तिसे रावनां । (१६५)

७. बोल्या = बोला
न बोल्या जू है बोल बोलन सके,
अवघड बोलनां क्यूं समयन सके । (७८)

८, माटी = मिट्टी
न पाथर न माटी न पानी न और (१६)

पवन आग माटी अधिक धात चार (१७)

९. रुक = वृक्ष
सप्त सपंद पानी जू मस कर भरन,
कलम रुक्क रुक पान पत्तर करन । (२२)

१०. जिनावर = जानवर
बिचारूं तेरा बोल हौं तब तुझे,
जिनावर जने ना के सूं जब तुझे । (८४७)

११. भौंदना = चकित रहना
जगत्तर भौंदा न हंकार पास,
कि तुरत आस दे भौंद कर जाए न्हास (२९२)

इस प्रकार के अनेक उदाहरण उद्धृत किए जा सकते हैं जिनसे यह बात

मानने को हम बाध्य हो जाते हैं कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा मुख्य रूप से दिल्ली और हरियाणा की भाषा खड़ीबोली और हरियाणी है।

हरियाणी की तरह 'कदमराव पदमराव' में भी 'ड़' और 'ढ़' के स्थान में 'ड' और 'ढ' पाये जाते हैं। क्रिया के साधारण रूप में अनुनासिक की प्रबल प्रवृत्ति हरियाणी से गृहीत लगती है। कुछ उदाहरण देखिए—

१. बोलनां = बोलना
अचिन्तें त्वें बोलनां बुद्ध न (७७)

२. खानां = खाना
न खानां तिसे जाए सब वैर चर (८९)

३. जीवनां = जीना
हमें जीवनां जरम तुज चावतल (१५२)

४. पत्यावनां = पत्याना, विश्वास करना
न पत्यावनां न तिसे रावनां (१६५)

५. करनां = करना
न जोगत अपस काम करनां न चाए (२३७)

६. पचतावनां = पछताना

७. चलवावनां = चलवाना
अखर वैस तन राव पचतावनां
कि कित ढंग अप राज चलवावनां (४८५)

८. मारनां = मारना
चिडी मारनाँ न किसी कूं सुहे (६५२)

भूतकाल बनाने की प्रवृत्ति में भी हरियाणी और दक्खिनी में समानता है। निज़ामी की भाषा में सैकड़ों उदाहरण देखे जा सकते हैं। सामान्यतः हिन्दी में मूल धातु के साथ 'आ' प्रत्यय लगाकर सामान्य भूतकाल बनाया जाता है। किन्तु हरियाणी में 'आ' के स्थान पर 'या' प्रत्यय जोड़कर भूतकालीन रूप

बनाया जाता है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' से कतिपय उदाहरण उद्धृत किए जाते हैं :

१. लिख्या = लिखा
क़लम ग्यान सूं तें लिख्या भग्ग जग (५)

२. रच्या = रचा
रच्या सब्ब संसार नेका बजौर (१६)

३. बोल्या = बोला
न बोल्या जू है बोल बोलन सके (७८)

४. देख्या = देखा
तुझे मैं भली दिष्ट कर देख्या (८९)

५. मार्‍या = मारा
कि बिन दोस मुंज कह कि मार्‍या उचाए (१०८)

हरियाणी के जो अन्य तत्त्व इस मसनवी में प्राप्त होते हैं वे इस प्रकार हैं:

जनावर (जानवर), कांध (कंधा), ईधर (इधर), ऊधर (उधर), कीधर (किधर) आदि। अनुनासिकता का आधिक्य, ना का प्रयोग (नाँ हरियाणी रूप है, जिसका अर्थ है ना), 'ने' का अभाव, सती और सेती ('से' के स्थान पर), 'तक' केलिए 'लग' का प्रयोग, दिसना (दिखाई देना), काढना (निकालना), अनुनासिक रहित प्रयोग जैसे नीद (नींद), ह्रस्व स्वरों को दीर्घ बोलने की रीति जैसे धारे (धरे), लागा (लगा), राहा (रहा), लीख (लिख), माटी (मिट्टी या मट्टी) बान्दर (बन्दर), दीर्घ स्वरों को ह्रस्व करने की रीति जैसे पिरत (प्रीत), कतिपय महाप्राणों को अल्प प्राण करके प्रयोग करना यथा : चडाई (चढ़ाई), अबी (अभी), हारा प्रत्यय जोड़कर कर्तृवाचक बनाना इत्यादि हरियाणी से गृहीत विशिष्टताएँ मानी जा सकती हैं। सर्वनामों के निम्नांकित रूप जो 'मसनवी कदमराव पदमराव' में पाये जाते हैं, हरियाणी के ही रूप हैं। यथा :

हमन (हम), तुमन (तुम), तूं (तू) अपस (अपना) आदि। प्रत्ययों में कूँ (को), सूँ, से, सेती (से) लग (तक), तें (ते = से), कन (पास) आदि।

धातु में न, अन आदि प्रत्यय जुडे हुए हैं। जैसे: देखन, चमक्कन, बोलन आदि आवना, रोवना, पीवना, देवना आदि रूप पंजाबी की तरह कीता, कीती आदि करना क्रिया का भूतकालीन रूप आदि हरियाणी से दक्खिनी के सम्बन्ध-सूत्रों को सुदृढ करते लक्षित होते हैं।

ऊपर उद्धृत उदाहरणों से इस बात की सत्यता सिद्ध होती है कि दक्खिनी का मूल ढाँचा दिल्ली और हरियाणा की तद्युगीन भाषा ही है। खड़ीबोली और हरियाणी दक्खिनी की आधार भाषा है जिसमें हिन्दी की अन्य बोलियों एवं उपभाषाओं के ही तत्त्व नहीं बल्कि अन्य आर्यभाषाओं के तत्त्व भी सम्मिलित हुए। दक्खिनी के विकास काल में द्रविड़ भाषाओं का थोडा–सा प्रभाव भी उस पर पड़े बिना नहीं रहा। ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के तत्त्व दक्खिनी को रूप देने में सहायक हुए। दक्खिनी के विकास काल में इन भाषाओं का विकास शीघ्र हो रहा था। इसलिए इनके तत्त्व भी जुड़ गए। उत्तर में अलग-अलग बोलियाँ और उपभाषाएँ समृद्ध होती गईं, जो एक दूसरे के साथ सम्बन्ध रखते हुए भी एक दूसरे से दूर चली गई। दक्खिन में आई हिन्दी नव्य भारतीय आर्यभाषाओं के उदयकाल की होने के कारण सभी भाषाओं के सम्मिलित तत्त्वों को अपने साथ लेकर विकसित हुई। अपने विकास काल में उसने दक्खिन की गुजराती और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए। तेलुगु और कन्नड़ भाषी प्रदेशों में भी दक्खिनी का प्रवेश हो गया तो वह इन भाषाओं का प्रभाव स्वीकार किए बिना न रह सकी, चाहे किंचित् मात्रा में ही क्यों न हो।

ब्रज, अवधी और राजस्थानी के तत्त्व :

दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश में ब्रज बोली जाती है। निज़ामी के परवर्ती दक्खिनी कवियों पर ब्रज का गहरा प्रभाव देखा जा सकता है। इब्राहीम आदिलशाह ने 'नवरस' ब्रज में लिखा। वजही के काव्य में ब्रज भाषा के पद्य उद्धृत किए गए हैं। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में भी ब्रज के तत्त्व मिलते हैं। अवधी के तत्त्व भी प्रस्तुत मसनवी में पाए जाते हैं। अवधी के 'बाज' शब्द कई बार आया है। राजस्थानी भाषा के शब्दों के अलावा व्याकरणिक तत्त्व भी पाए जाते हैं। भविष्यत्‌काल के प्रत्यय 'सी' को पंजाबी का प्रभाव बताया जाता है। वह राजस्थानी का तत्त्व भी माना जा सकता है। इस प्रकार ब्रज अवधी, राजस्थानी आदि भाषाओं और बोलियों के तत्त्व दक्खिनी के प्रारम्भकाल से उसमें जुड़े हुए हैं।

पंजाबी के तत्त्व :

'मसनवी कदमराव पदमराव' में पंजाबी का अधिक प्रयोग पाया जाता है। यथा—

आनैं = आनना = लाना
बड़ा रुक्ख आन्या शरा की आरान,
धरत पैर पकडे गगन डाल थान । (३६)

दीसे = दिखाई दे
जू मुज अंक दीसे सू मंदान तुज,
जू मंदा मन्ह में होए वंदान तुज । (९)

सुनोए = पंजाबी ढंग का सम्बोधन
सुनोए फख्रुदीं तूँ बसर आंख्या,
मुहम्मद नबी ख़ातिम अंबिया । (२८)

कीता = सामान्य भूतकाल का रूप
नबी बैरें दंद कीता बनार,
अंगुल हत कर चंद कीता दो फ़ाड़ । (३९)

लोड़े = खोजे
फ़लक बींच लोडे जे सर संजरी,
कि कई जीव ले कई रुसवा करी । (१०४)

न्होसी कधीं = न होगी कभी
न ठगठगपना छोड़सी जग्गथ्थग,
न्होसी कधीं पांडर पंक लग । (२००)

न रहसी = न रहेगा
जू दीठा कछू था सू रह्या न थांव,
न रहसी जू दीसे कछू नक़्श नांव । (२१७)

अग = आग
कपट भाव थीं मुज उठे सीस अग,
बुलन्दी चले पाए थीं सीस लग । (२२९)

दूजा = दूसरा
तिरी मत होई मत पर कब्ब लग,
जू दूजा न देखे पुरुख तब्ब लग । (२४०)

आखे = कहे
कदमराव आखे सुनी बात धन,
करे कन्न वासुख कह्या अक्करन । (२५१)

आन = ला
कोई जे रहै भूक कर आन रोस,
बसा है अपस आप करतार दोस । (२८१)

सूँ = तुम बहर = बाहर
निराधार की सूँ अधर मुक खोल,
न आनूं बहर मुक तुज मुक बोल । (४३७)

आवसी = आयेगा
न पर गोर में तूं रहन आवसी,
न तेरा पहर गोर तुज आवसी । (४९७)

बदल = बादल
पडे क्यूं न बिजली बदल सीस टूट,
पवन की न कीता बदल फाट फूट । (५२१)

न कर सूं = न करूंगा
नकर सूं तदर दान देवँ इताल,
जू इत्ताल रावा अनावे संभाल । (५९१)

जासूं = जाऊं
भला भी तुहीं मुँज बुरा भी तुहीं,
तेरे पाए (हौं) छोड़ जासूं कहीं । (६२८)

हारसी = हारे, हारता है
कंगन हत्त क्या देखनां आरसी,
अहै राज तूं देख क्यूं हारसी । (६९२)

पिछें = पीछे
निडर मिल्ल रावें सुना बोल राए,
उचा सीस पिछें सर्या दोए पाए । (८१९)

गिरास = नवाला
खड़ा जे उडे तूं लगे उड अकास,
जू अक्कास लागे वही मुँज गिरास । (८४५)

अख्यां = आंखें
इंशा अल्ला ताला जे राव मुँज मिले,
जू अख्यां तुझे होए आखों तुझे । (८४६)

वेल = वेला, समय
जिसे वेल मुँज घर मिल्या राए धन,
सहारूं तिसी वेल के सब बचन । (९१५)

सिंधी के तत्त्व:

इस मसनवी में अंतिम अक्षर पर ज़बर लगाया गया है जिसे अब हिन्दी त्यक्त कर रही है। किन्तु, सिन्धी में यह प्रवृत्ति अब भी जारी है। सिन्धी प्रभाव के कतिपय उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं—

के (सिंधी खे) अर्थ है को
गगन के किया ऊंच तल पर थमीं (२१०)

घुरे = माँगे, चाहे
घुरे कोई उपचार ना चार पाप (२२८)
धनी राज कूँ पीवनां तद घुरे (३२५)

के = से
अखरनात परमान ले राव के (४७२)

अच्च = हो, आव
सुखी राज तूँ अच्च थिर राजकर (६०७)

मंझार = में, बीच में
रोवे घाल कर मुख कोठी मंझार (७१७)

रली
रली क्यूं करे वह दिवाना कंभाल (८४०)

तलहार = नीचे
न मुँज सुध ऊपर न तल्हार सुध (९४०)

मंझार
तथां थीं रह्या राव छज्जे मंझार (१०१७)

वाह = आग
कि मुक फूल दिसे जीव ले वाह हौल (२९५)

गाल = वात, गाली
कि रावां गया आज मुँज देह गाल (५११)

हिएं = हृदय
न मेरे हिएं सुद्ध न सीस बुध (९४०)

ऊभा = सिन्धी में उभ्भा
कुंडल फीर ऊभा हुआ सरो बन (९३३)

उचा = ऊँचा किया
उचा सीस बाहर कई यक न बात (९३५)

प्रस्तुत मसनवी में प्रयुक्त 'करें' 'कर' के अर्थ में अर्थात् विधि रूप में आज भी सिन्धी में व्यवहृत होता है। इस प्रकार मराठी, गुजराती और तेलुगु के प्रभाव को सूचित करनेवाले कतिपय तत्त्व भी पाए जाते हैं। 'मसनवी कदमराव पदमराव' की मूल भाषा खड़ीबोली है। इस खड़ीबोली में हरियाणी का अंश भी है। इसके अतिरिक्त अपभ्रंश, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, मराठी, गुजराती, तेलुगु, संस्कृत, अरबी, फारसी आदि अनेक भाषाओं के अनेक तत्त्व एक साथ विद्यमान हैं।

मराठी के तत्त्व :

अवधारणबोधक 'च' और नकारत्थर्क 'नको' का प्रयोग दक्खिनी को पहचानने का चिह्न-सा हो गया है। किन्तु 'मसनवी कदमराव पदमराव' में 'च' दो स्थानों पर ही पाया जाता है—

घुरे कोई उपचार न चार पाप,
न भावे मुझे वह जू मेराच बाप । (२२८)

एकायक कह्या तून्च मेराच सीख,
धनुरबिद्दिया में दिया तद्धा भीक । (५५४)

'नको' का कविवर निज़ामी ने एक स्थान पर प्रयोग किया है—

डिढाई नको कर..........................जीव दीट,
न जीव ते बहन डर निपट जोय ईट । (८३५)

मराठी के कतिपय शब्दों का प्रयोग भी कवि ने किया है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

दक्खिनी शब्द	मराठी शब्द	अर्थ और प्रयोग की	पंक्ति संख्या
आगला	आगला	विशेष	१८४, ५०५
अझूं	अझून	अभी	७२१
अभाल	आभाल	मेघ	५२०
अवचिता	अवचिती	एकाएक	७६४
आरसी	आरसी	आइना	६९२
कधी	कधीं	कभी	१९८
घालना	घालणे	डालना	१२२
जनावर	जनावर	जानवर	८४७
नको	नको	न	८३५
पत्याव	पत्याणे	विश्वास रखना	१६८
बी	बी	भी	९८
बैसन	बिसाना	बैठना	५०५
भुईं	भुईं	भूमि	६६१
रावाँ	रावा	तोता	५११
सोसना	सोसणे	सहना	४७०
सेंसार	सेंसार	संसार	१६

गुजराती के तत्त्व :

जे, सहदेसना, परदेसना, अने, मान्ह, बापडा (निर्धन, बेचारा), बीझू (दूसरी बार, बाद), पोंगडा (लड़का), दूजा (दूसरा) आदि शब्द गुजराती के तत्त्वों की ओर संकेत करते हैं ।

जमारे लिखें सब फरिश्ते कि जे,
न पूरन लिखन तद तौहीद ते । (३३)

कि जे लोडता दोस बख्शावनें (९१)

जू कुच मैं कह्या भेद सहदेसना,
कहूं अब्ब कुच भेद परदेसना । (३१८)

बजर अंग अंजन अने बंद धार
गगन थंब जल थंब जावें उपार । (३८४)

भलीं जान्या राव तिस वेल मान्ह,
न था तीसरा कोई हम मेल मान्ह । (९१७)

कहीं बापड़ा, नार हौं मयान काल (६५०)
न बीझू केरा बैर झंकर धरूं
पछू पोंगडा खाए जिन पेच माए (९५०)

जू दूजा न देखे पुरुख तब्ब लग (२४०)

इसी प्रकार तुरत, अंपडना आदि अन्य अनेक गुजराती शब्द इस मसनवी में पाए जाते हैं ।

तेलुगु का प्रभाव :

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' पर तेलुगु ने कितना और कैसा प्रभाव डाला है । दक्खिन के मराठी, गुजराती और तेलुग भाषा-भाषी प्रदेश जब एक ही शासन के अधीन इकट्ठा हो गया तब वहाँ प्रचलित हिन्दी पर अर्थात् दक्खिनी पर इन भाषाओं का प्रभाव पड़ा । दक्खिनी पर द्रविड परिवार की भाषाओं का बहुत ही कम प्रभाव पडा है । 'मसनवी

कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त द्रविड भाषा के जो शब्द हैं वे निश्चय ही तेलुगु के प्रभाव माने जा सकते हैं। यह सही है कि इनमें से कतिपय शब्द मलयालम में भी व्यवहृत होते हैं। अब तेलुगु के प्रभाव को सूचित करने केलिए प्रस्तुत मसनवी में आए उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

वेरा हुआ = पृथक् हुआ
कि वेरा हुआ बाज संगत न होए (७०९)

'नीर' शब्द यद्यपि संस्कृत तत्सम है तो भी 'पानी' के अर्थ में बातचीत में इस शब्द का प्रयोग तेलुगु, तमिल आदि द्रविड भाषाओं में किया जाता है। उदाहरण देखिए—

पवन पिंजरे, हांक में नीर ज्यों (२६५)
बहुत ज्यश्ती मन धरे जोग अंग (३२९)

'ज्यश्ती' शब्द फारसी 'ज़्यादा' से बना है। इस शब्द के द्रविड़ भाषाओं में जो रूप प्रचलित हुए हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। तेलुगु और मलयालम में 'ज्यास्ती' और 'जास्ति'। 'ज्यास्ती' शब्द मुल्ला वजही जैसे परवर्ती दक्खिनी कवियों ने प्रयुक्त किया है। वजही के 'कुत्बमुश्तरी' काव्य में यह प्रयोग द्रष्टव्य है—

गये ज्यास्ती सब रहे मुख्तसर। 1
हुआ ज्यास्त तुज ते मज़ा बात का। 2

तेलुगु के 'मंदा' शब्द का प्रयोग भी निज़ामी ने किया है। 'मंदान' शब्द भी तेलुगु के 'मंदा' शब्द से बना है जिसका अर्थ है 'समूह'। उदाहरण द्रष्टव्य है—

जू मुज अंक दीसे सू मंदान तुज,
जू मंदा मन्ह में होए बंदान तुज।

1, 2 मुल्ला वजही, कुत्बमुश्तरी, पृ. ४७, ३२ सं. बिमला वाघ्रे, नसीरुद्दीन हाशमी

अरबी-फारसी शब्दों के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

कलम, जरम, मुशाला, फ़लक, फरिश्ते, तौहीद, नबी, नग्ज़, गुफ़्तार शजरा, खुदा, मुस्तफ़ा, मदह, सुलतान, शाह, अलम, तबल, इलम, ताज, लक़ब, जहांगीर, वले, सलाम, दुनिया, दरवेश, जहान, जुफ़्त, खुमारी, सरकुलाह, लिबास, हराम, मुरस्सअ, मुकल्लल आदि।

यह भी उल्लेखनीय है कि इस काव्य ग्रन्थ में प्रयुक्त अरबी-फारसी के शब्द लगभग एक सौ पचास हैं। इन में से अधिकांश शब्द मंगलाचरण, नात एवं शाहे वक्त की प्रशंसा के सन्दर्भ में प्रयुक्त किए गए हैं। ऐसे शब्द भी पाए जाते हैं जिनके पूर्वार्द्ध अरबी-फारसी के हैं और उत्तरार्द्ध हिन्दी के। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

मुसख्ख़र करन = वश में लाना
उन्हें शह किया शाद दक्खन धरन,
गगन दल, धरत दल, मुसख्खर करन। (५३)

मुसख्ख़र हुआ = वशीभूत हुआ
उतारिद मुसख्खर हुआ ले क़लम,
मुसख़्खर किया सूर, दे हत अलम। (५४)

'मसनवी कदमराव पदमराव' में कतिपय ध्वनिगत विशिष्टताएँ :

प्रस्तुत काव्य 'मसनवी कदमराव पदमराव' में व्यवहृत शब्द दक्खिनी के ध्वनि–विकास के अध्ययन के लिए काफी सहायक हैं। एक ही शब्द के कई रूप ध्वनि परिवर्त्तन की विभिन्न दशाओं के द्योतक हैं। दक्खिनी के परवर्त्ती ग्रन्थों में जो ध्वनिगत प्रवृत्तियाँ पायी जाती हैं उनके मूल स्रोत का ज्ञान हमें 'कदमराव पदमराव' से मिलता है। प्रस्तुत मसनवी का भाषावैज्ञानिक अध्ययन यहाँ अभीष्ट नहीं है। फिर भी ध्वनि सम्बन्धी कतिपय महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर विचार करेंगे।

१. अनुनासिक ध्वनि का आधिक्य

संज्ञ, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय आदि में अनुनासिक का प्रयोग काफी अधिक मिलता है—

सूं तूं शाह गंभीर गडवा कहीर (६८)

घड़ी खांड का सुख मद पीवनां,
खुमारी केरा दुख ले जीवनां। (३२३)

इस प्रकार अनुनासिक ध्वनियाँ शब्दों के अंग-सी बन गई हैं। खड़ीबोली, ब्रज और अवधी में जन सामान्य की भाषा पर यह आज भी चढ़ी हुई है। निम्नांकित उदाहरण 'कदमराव पदमराव' में देखे जा सकते हैं—

घांस = घास
रुइ घांस थीं अग्ग झांपी न जाए (१८३)

उडंता = उड़ना
उडंता पंखेरू धरे दिल अदोस (२३१)

झूंट = झूठ
उडाए गए धर जरी झूंट कर (५७२)

शंक = शक
न इस भाव शंका धरूं हूं न शंक (१८४)

पूंछते = पूछते
बतूली दिया पूंछते काट नाक (८७०)

ढांक = ढाक
न बरछियाक का चंद कूं आव ढांक (२०७)

मुँज = मुज = मुझ
कि अब नहीं थीं मत्त मुँज लेह भाग (२५६)

आदमीं = आदमी
नहीं आदमीं और भी आदमीं (२१०)

घंट = घट
करे घंट वनमान तूं ले उपास (२१३)

थावं = ठाँव
मखी खाएँ (न) मरे कोई थावं

नावं = नाम
मरे मलमले जीव संमुख नावं। (२२७)

बूंटी = बूटी
न झाडी न बूंटी डरे वाव कूँ (३१६)

२. अनुनासिकता का अभाव

जहाँ हिन्दी में अनुनासिकत्व का प्रयोग किया जाता है वहाँ उसका अभाव भी 'कदमराव पदमराव' में देखा जाता है—

फूक = फूँक
दधा दूद का छाचहा पीवे फूक (१७२)

हाक = हाँक
सभी इस्तिरियाँ एक लकडी न हाक (२०६)

सपूरन = संपूर्ण
सपूरन धनुर्भेद सीख्या कदम (४४१)

३. वर्ण-विपर्यय

'मसनवी कदमराव पदमराव' में वर्ण-विपर्यय के अनेक उदाहरण मिलते हैं—

पलेट = लपेट
कि जिस भेंट थीं राज सब ले पलेट (३७४)

लवानीत = नवनीत
कि जे कोई संवरे लवानीत खाए (७७७)

डंदवत = दंडवत
किसी भीत परिवार डंदवत दे (६५६)

चमकतार = चमत्कार
चमकतार मुज देख बिद्दिया संभाल (४६६)

र–ल और व–ब के विपर्यय के कई उदाहरण मिलते हैं—

दिवाल = दीवार
कि सर थीं हुवा पाए लग ज्यूं दिवाल (६२२)

बिभूती = विभूति
अधारा बिभूती खपर दंद अखर (१७६)

पत्तन = पटन
गया पूर पत्तन जू भरपूर होए (२४८)

'ज्यादा' शब्द का 'ज्यश्ती' में परिवर्त्तन—
बहुत ज्यश्ती मन धरे जोग अंग (३२८)

ध्वनि सम्बन्धी दूसरी विशेषताओं में ह्रस्व स्वर को दीर्घ करके प्रयुक्त करने की प्रवृत्ति निम्नांकित शब्दों में पायी जाती है—

जू भर बुंद ले कान जग सीप कर (६२)

शहंशह बडा शाह अहमद कुंवार (६४)

न राहा तिन्हें देखतें नयन बंक (१५७)

तलावार ले सूर दे सात मुंज (२७७)

अखर कूं जू राखे सूतरधान होए (४०९)

दुगुन घ्यान लागा कदमराव कूं (४९४)

पढाया अखरनात मंतर सकाल (४८०)

न बढी करा काम बांदर सके (६७६)

जनावर जने ना के सूं जब तुझे (८४७)

संज्ञा

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त शब्दावली पर शष्टिपात करते समय हम इस तथ्य से अवगत हो जाते हैं कि इसमें प्रयुक्त अधिकांश संज्ञाएँ

संस्कृतमूलक हैं । अन्य भाषाओं के शब्द भी अल्प संख्या में ही क्यों न हों प्राप्त होते हैं ।

सर्वप्रथम हम संस्कृत शब्दों पर विचार करेंगे । प्रस्तुत मसनवी में प्रयुक्त बारह सहस्र शब्दों में दस सहस्र शब्द संस्कृत के हैं । संस्कृत शब्द तीन प्रकार के मिलते हैं – तत्सम, अर्द्धतत्सम एवं तद्‌भव । कतिपय तत्सम शब्द द्रष्टव्य हैं :

जग, पाताल, बल, भाग, आकाश, अधिक, मुख, रूप, बुद्धि, मुकुट, निराधार, आधार, खड्ग, अंत, गगन, भुजंग, गंभीर राजा, महान दल, अभाग, निरूप, कपट, हानि, सेवा, नायक, भाव, मंदिर, कोप, चित्त, नारी, नाग, उत्तम, कनिष्ट, कलंक, परिमल, अभिमान, अपार, उपचार, उपकार, उत्तर, उच्चार, अचर, अंचल, अधर, अंग, अंबर, अंगुल अहित, अहंकार बुद्धिमान, चतुर, चिन्ता, भार भाग, भानु, भंडार, पवन, दास, दान, दिनमान, धरती, रोग, सुबुद्धि, कुबुद्धि, कृत, कोपभाव, गज, गरुड, गमन, घातकी, घन, लाभ, लोक, मधुर, मन, नाद, समान, सदाकाल, महाभुजबल, फन, पाप, उदर, कस्तूरी, काल, कारण, जीव, दिवस, नयन,नागर, अन्न, अमर भेद, आसन ।

अर्द्धतत्सम शब्द :

अंदकार, अकाश, अधार, निरधार, अभीमान, अमिरत, आकास, आदित, उपास (उपवास), जोत, जोबन, तरनपन, दिष्ट, दीस, धरम, नार (नारी), नित, (नित्य), पदारत, परताब (प्रताप), परधान, परबंस (परवंश), परान (प्राण), परसाद (प्रसाद), प्रिथमी, पुरुस, बस्तु, बिसवासघात, बिस (विष), मारग, मुक, राकस, रीत (रीति) ।

तद्‌भव शब्द :

अंख, आंख, आसरा, आन, काम, गुसाई, जतन, आग, नाक, पंखेरू, पसार, पहर, पात, पान, पाव, पिरत, बरस, भगत, भिकारी, भीक, भूका, माटी, राव, रुक्ख, रुख, समंदर, साँप, सिंगर, सिंघासन, हिया ।

अब हम दक्खिनी के शब्द निर्माण पर विचार करेंगे । 'मसनवी कदमराव पदमराव' में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर अनेक शब्द निर्मित किए गए हैं ।

मुख्यत: संस्कृत उपसर्ग जोड़कर बनाये गए शब्द ही मिलते हैं। अरबी - फ़ारसी के उपसर्गों से निर्मित शब्द बहुत ही कम हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं :—

१. अ

धनीं ताज का कौन गजा अभंग	(६५)
असंगत बहुत बोल न देक बोल	(७५)
अबल कांढ हांडी जूं आपें रहे	(१९६)
अरोगन करूं दान तिस दे अदास	(२८९)
बधावा हुआ जिन अखर अंग अपार	(४२५)
कुबुद्धी वसा है अपस काम अबुद्ध	(५४४)
उडंता पंखेरू धरे दिल अदोस	(५८४)
जू मुंह मूंद आछे मरे वह अचर	(६४४)
तुहीं देह अभ्भाग तूं देह भाग	(७७१)
जू झूटी करे सेव पावे अचित	(७५७)

२. कु

असंगत निरूप और दीता कुबल	(५९२)
कुबुद्धी बसा है अपस काम अबुद्ध	(५४४)
कुबुद्धी कुसुद्धी मुझे जान कर	(९३९)
सुजात एक नागिन कुजात एक साँप	(१५८)
कि दीस आपना देक हिंदू कुभेस	(८१६)
जब अपना हुआ दाम खोटा कुपंग	(१०६)

३. नि

बिनातो की पंख तूते निसंग (८२०)

४. निर

जिसे ऐसा गुसाईं निरधार होए,

निराधार कूं क्यूं आधार होए । (८९४)

कि निरजीव कर पंख दे जीव सूं (४६५)

सदाकाल था बोल तुज निरमला (६३९)

५. अव

गुन अवगुन सबद मुक मूंज झांप ले (९६०)

जनाए बहुत अवसगुन राव कूं (४७४)

पर अवघड सबद मुंज सुन क्यूं रहूं (६४७)

३. प्र

दोए जग्ग सर्रे दे परसाद नूर (३४)

निरूप यूं दिया राव परधान कूं (७४)

वड़ा जिस केरे लेह तिस का परान (८८४)

७. पर

दुनिया में बुरा काम परनार संग (१००)

न परवंस का दोस मुंज दोस दे (१८१)

कहूं अव्व कुच भेद परदेसना (३१८)

अखर राखनें वह परउपकार होए (४०१)

न परमुख खाई कोई तन अखाए (५९४)

जू परबोध सुन कर करें कूढ बुध (७४२)

जू चाल आपनी छोड परचाल जाए (७४३)

इस प्रकार उपसर्ग जोडकर बनाए गए अनेक शब्द इस मसनवी में मिलते हैं। यथा—

अखानां (न खाना), अचूक, अढल, अयानां, अन्याव, अहित, अदास, अचिन्तें, अनहोन, अदोसी, अमोलक, अबुद्ध, परकाम, सुजात, सरूप इत्यादि। अरबी-फारसी के 'दरसदा', 'बेसत्तरा' आदि शब्द भी पाए जाते हैं। संस्कृत शब्द में फारसी उपसर्ग लगाकर जो शब्द निर्मित किया गया है उसका उदाहरण है 'दरसदा'

सूहाई होई मुंज तेरे दरसदा (६४८)

प्रत्यय :

दक्खिनी में खड़ी बोलो में प्रयुक्त सभी प्रत्यय पाये जाते हैं। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में अपभ्रंश से गृहीत प्रत्यय 'पन' और उसके विकृत रूप 'पना' 'पनी' आदि लगाकर निर्मित शब्दों की बहुलता है। दक्खिनी के परवर्ती कवियों ने 'पन' प्रत्यय लगाकर भी बहुत कम शब्द प्रयुक्त किए हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

पन —

कह्या नाग धरतन कपट भावपन (१०७)

जू कुच हितपन था सू मैं तुज कह्या (२९६)

तरुनपन भला कुच्च जग पत्त होए (३९३)

न बोलूं कधीं झूटपन साच बोल (४०५)

पना —

सरब नवल मीतरपना जद धुरे (३२५)

न ठगठगपना छोडसी जग्गथग (२००)

पनी —

करे घात का काम धनुवरतपनी,

मिलावे सभालोग संगतपनी । (३१२)

करी बात मंतरपनी खत्तरी (५९५)

इनके अतिरिक्त बालपन, जानपन, राएपन, एकपन, साँपपन, सीसपन, दुरजनपनी आदि शब्द भी 'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त किए गए हैं।

'आं' प्रत्यय जोड़कर बनाए गए शब्दों के संबंध में हरियाणी के तत्त्व के अन्तर्गत चर्चा की जा चुकी है। यह प्रत्यय लगाकर बनाए शब्दों की संख्या अधिक है। जैसे—

बोलनां, खानां, रावां, सयानां, बहतां आदि। इस प्रकार के शब्दों में क्रियाएँ संज्ञाएँ वौर अव्यय भी हैं।

'पत' और 'पती' लगाकर बनाए शब्दों के उदाहरण देखिए —

न खूनीपती भाग कर देनूपत (४०१)

'वंत' और 'वंदी' जोड़कर बनाए शब्द भी इस मसनवी में उपलब्ध हैं —

मधरबुध परधान हितवंत राव (५२३)

कि तूं राए बुधवंत यह कौन बुध (५२७)

संवर राए परधा (न) सतवंत सत (५७८)

के जे राम के यार हनुवंत था,
न तुज सार का ओह हितवंत था। (५८०)

वलवंदी जू (यू) पत एक ले घाल कोए (९०५)

जू यकवंदी दो मुंह सोई मार खाए (१३०)

'आव' प्रत्यय लगाकर निर्मित शब्द भी काफी संख्या में मिलते हैं। यथा—दिलाव, रखाव, दिखाव, सिखाव, उचाव आदि

बुलाव आज परिवार कपडे दिलाव (३५२)

गया पारनां राव अक्खर रखाव (३७७)

धनुरभेद का भेद अब मुंज दिखाव (४३०)

कह्या राव यह बिद्दिया मुंज दिखाव
कि वनमान तूं न दे मुंज सिखाव ? (४७१)

कि जे बरज्या तूं मुझे सिर उचाव (६३०)

दक्खिनी में धातुओं के साथ 'हार' या 'हारा' प्रत्यय लगाकर कर्तुवाचक शब्द बनाये जाते हैं। यह प्रवृत्ति भी प्रस्तुत मसनवी में पायी जाती है। उदाहरण द्रष्टव्य है—

बरोबर दुन्ह जग तुहीं देनहार (१)

रचनहार अंग्घे रचनहार तूं (३)

निज़ामी कहनहार जिस यार होए,
सुननहार सुन नग़्ज़ गुफ़्तार होए। (२९)

करनहार तूं बाज तुज किस कहूं (७८३)

'न' प्रत्यय लगाकर बनाए शब्द भी अधिक संख्या में पाए जाते हैं। जैसे—

गगन दल, धरत दल मुसख़्ख़र करन (५३)

न पूरन लिखन तद्द तौहीद ते (२३)

कि ते वेल विलगत करन राजकर (३१)

अन्य उदाहरण हैं : बिनती करन, नयनन छपन, हंकारन करूं, अरोगन करन, कहन न सके, मरन, उचावन, पथावन, थपन, उतारन, सुलावन चल्या, गंवारन करे, बोलन लगा आदि आदि ।

दक्खिनी का परिनिष्ठित रूप अब तैयार नहीं हुआ था । इसलिए एक ही शब्द के भिन्न - भिन्न रूप इस मसनवी में पाए जाते हैं । यथा —

आकास, आकाश, अकास, अक्कास

अधार, आधार, आदार

अधिक, अदिक

पाताल, पताल

मुक, मुक्ख, मुख

जग्ग, जग

लाब, लाभ

रुक, रुख, रुक्ख

पुरुख, पुरुस

अखर, अच्छर, अक्कर

लाक, लाख, इत्यादि ।

अनुकरणात्मक शब्द :

अधिकांश अनुकरणात्मक संज्ञाओं को ध्वनि के अनुकरण पर निर्मित किया गया है । ये शब्द भी अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है :

१. शब्द द्वित्व :

एक ही शब्द को बिना किसी परिवर्तन के दुहराया जाता है —

ठार - ठार, चुन - चुन, धर - धर, धूक - धूक, चर - चर पंख - पंख जम - जम, झार - झार, गरज - गरज, बरस - बरस

२. शब्द के पूर्वांश में कुछ परिवर्त्तन होता है —

अनेकी अनेक, बरसा बरस, ठारें ठार आदि। अन्य उदाहरण —
हाल - झूल, लांप - झांप, जग्ग - थग्ग आदि।

समस्त पदों के प्रयोग का आधिक्य पाया जाता है। भिन्नार्थक हिन्दी, फारसी और संस्कृत शब्दों से अनेक समास निर्मित किए गए हैं। डा॰ कादरी ने ठीक ही लिखा है "दक्खिनी के पुराने लेखकों ने विभिन्न भाषाओं के संयोग से अनेक उपयोगी एवं विचारणीय समासों की रचना की है।" 1

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त समस्त पद द्रष्टव्य हैं —

पाव बल, धाव तल, हत बल, गगन दल, पाए तल, मुख तल, नूर धर (अरबी और हिन्दी), धरत दल, दिष्ट तल, राज थल, चाव तल, पंख बल, छांव तल, राज दल, खड्ग राव, भिरग राव, दिष्ट अंत, दक्खन धरन, संजोग जोग, भग्ग जग, जगा जोत, दान तल, पान फूल, नाग राव इत्यादि।

अनेक शब्दों में अनुनासिक का प्रयोग भी द्रष्टव्य हैं—

तूं, मुंज, मुंझ, कूं बोलनां, खानां, खोलनां, जीवतां, जीवनां, पत्यावनां, रावनां, करनां

घांस (घास), उडंता (उडना), झूंट (झूठ), शंक (शक), पूंछते (पूछते) बूंटी (बूटी) आदि।

अनुनासिक युक्त शब्दों के अनुनासिक रहित रूप भी पाए जाते हैं। यथा –

फूक (फूंक), हाक (हांक), सपूरन (संपूरन) आदि।

बहुत से शब्द – युग्म पाए जाते हैं जो विपरीतार्थ का द्योतन करते हैं। यथा –

न्याव × अन्याव
सुजात × कुजात

1 Hindusthani Phonetics P. 43

सुबुद्धी	×	कुबुद्धी
सुबुद्ध	×	अबुद्ध
गुन	×	अवगुन
दोस	×	अदोस
हित	×	अहित

मध्य कालीन भारतीय आर्यभाषा काल से प्राप्त शब्दों के संबंध में एक बात उल्लेखनीय है। दक्खिनी में एक ही अर्थ के लिए मध्य कालीन भारतीय आर्यभाषा काल से प्राप्त एक से अधिक शब्दों का व्यवहार होता है। यह प्रवृत्ति प्रारम्भ काल में बहुत ही प्रवल रही। निम्नलिखित उदाहरणों से इसका परिचय पाया जा सकता है।

१. क) नारी, तिरी

सुन्या था कि नारी धरे बहुत छंद,
सू मैं आज दीठा तिरी छंद पंद। (१५५)

ख) नार

कई नार चंडाल नागर अढाल,
बिराना पुरुख छोड अपना संभाल। (१०५)

ग) महर्‍या

महर्‍या ... कौन संगत पड़े ? (२३२)

घ) महरनी

महरनी अपस पाट का घर (न खे) रहै (८३२)

ङ) इस्तिरी

मरो इस्तिरी वह जू पर पुरुख तल (२४४)

च) इस्तिरियां

लभी इस्तिरियां एक लकडी न हाक (२०६)

२. क) अकास

अकास ऊंच पाताल धरती तुहीं (२)

ख) अंबर

तुहीं ऊंच अंबर सर्या बाज अधार (१०)

ग) अक्कास

न अक्कास धरती न दंबू न चंद (३४)

घ) फ़लक

फलक लेह् चौडोल खंद आप चल (५८)

ङ) गगन

गगन के क्या ऊंच तल पर थमीं (२१०)

च) आकास

जू आकास उसकूँ रह्या बूंट दोए (६५७)

३. क) धरती

अकास ऊंच पाताल धरती तुहीं (२)

ख) भूईं

रह्या भूईं सिर धर दोए पंख उचाव (८१५)

ग) धरत

धरत सात रूचन्द अकास सात (८)

४. क) दुनिया

धरत जे हंसे न, दुनिया क्यूं बसे (९३०)

ख) संसार

अमोलक मुकुट सीस संसार का (३२)

ग) संसार

रच्या सब्ब संसार, नेका वजीर (१६)

ङ) जग

गुसाईं तुहीं एक दुन्ह जग अदार (१)

अन्य पर्यायवाची शब्द जो 'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त किए गए हैं वे इस प्रकार हैं —

५) सूरज, भान, सूर, दिनमान, आदित, रवी, अदो
६) पाथर, फतर
७) समंदर, समंद. सागर
८) नीर, पानी, जल
९) खड्ग, तलावार, खंडा
१०) धन, धटा, मेग, बदल, अभाल
११) करतार, गुसाईं, खुदा
१२) राजा, शाह, राव, रावत
१३) नर, जन, मानुस, आदमीं, पुरुस
१४) हत्त, हात, हस्त
१५) कनक, कुंदन, भंकार, हेम, सुन्ना, सुनना
१६) सांप, नाग (नागिन, नागिनी), सर्प

१७) वावला, दिवाना

१८) सभीं, सकाल, सभी, सब, सरब, सारां, सब्ब

१९) नहीं, नको, न, ना, नैं

२०) दिल, हियां, मन, चित

२१) बाट, माग, राह, मारग

२२) रैन, रात, निस, रातवा

२३) साथी, संघाती, यार

२४) गज, हाती, हस्ती

२५) चंदा, चंदर, चंद, चंदनां, ससा

लिंग और वचन

'कदमराव पदमराव' में लिंग और वचन सम्बन्धी अव्यवस्था पायी जाती है जो दक्खिनी की विशिष्टता रही है। नाग, नागिन, नगिनी और पापी, पापिन आदि रूप मिलते हैं। वचन सम्बन्धी व्यवस्था धीरे-धीरे स्थिर हुई, किन्तु अनेक अपवाद भी सोष रह गये।

हिन्दी-उर्दू में अकारान्त पुल्लिंगवाची शब्दों के अविकृत रूप बहुवचन में अपरिवर्त्तित रहते हैं। किन्तु, दक्खिनी में 'अ' को 'आं' कर दिया जाता है। कतिपय उदाहरण 'कदमराव पदमराव' से द्रष्टव्य हैं—

बहुत — बहुतां

बहुत जूलैसी जू मिले सूधने (१९)

द्रोही धरत जान बहुतां संधात (५१२)

वचन के निम्नलिखित रूप भी दक्खिनी के इस आदि आख्यानक काव्य में मिलते हैं—

हंस — हंसानां

रावां — रावें

चिडी मिल चिडी (और) हंस (मिल) हंस (२३९)

हंसानां न लोडे आवई वेल बाज (७९३)

परहूक एक रावां जू खर था सुजात (५८३)

कदम राव रावां हुआ तन गंवाव (४४७)

न रहता कदम लोड रावें संजार (४५०)

बहुवचन के निम्नलिखित विविध रूप भी द्रष्टव्य हैं—

नन्हा, नन्हां - नन्हे

नन्हा राए था पर पडी बुध थी (६९३)

नन्हे की नन्ही बुध माने न कोए,
नन्हां सू नन्हां जे नबी पूत होए (६९४)

नन्हे सार का राज खोए परान (६९५)

चेला — चेलान

न चेला रहै कोई त्यूं हौं रहूं (५४९)

जू अपड़ें कछू दीस चेलां अघाए (१२९)

खेलतें (बहुवचन)

असंगत दीठे खेलतें लांप-झांप (१५८)

गंवारें (बहुवचन)

गंवारें करे कन में बुध कूं (२६५)

परदेसीन (बहुवचन)

जू परदेसीन थी डरे वह निदान (३०१)

खांदे (कंधे)

चल्या पालकी जाए खांदे कहार (८९१)

पड़ी खलबली सुंदरियां रानियां,
तल ऊपर होयां दासरियां चेरियां (८५)

कि जे अछरियां होए भी ना पत्याव (१६८)

नयन — नयनन
कि जिस झरत थीं नयन झांपी पडी (६२१)

कि जे न लिवे हंस बाज आप नयन,

गंवावे जहूं त्यहूं कि मैं आप नयन (८०२)

पथावे सभी लोग नयनन छपन (६१९)

फत्तर — फत्तरन

सभीं (बा) फत्तरन होए जे एक मोल (२०५)

अकर, अखर — अक्करन

करे कन्न बासुख कहयां अक्करन (२१५)

एक वचन में भी 'आं' प्रत्यय लगाये हुए रूप के उदाहरण हैं—

सयानां, अयानां, रावां आदि।

लिंग और वचन की अव्यवस्था के उदाहरण हैं—

कई नार, गया लोग आदि।

सर्वनाम

'मसनवी कदराव पदमराव' में प्रयुक्त सर्वनामों का विवरण इस प्रकार है—

१. पुरुषवाचक — मैं, हौं, तूं, तैं, सूं (पंजाबी का प्रभाव)
२. निजवाचक - आप

३. निश्चयवाचक — यह, वह, ईह, वोह

४. अनिश्चयवाचक — कोई, कछू, कुच, चुक

५. संबंधवाचक — जू, जे

६. प्रश्नवाचक — कौन, कवन, क्या, का, क्यूं

सर्वनामों विकारी के रूपों के उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं—

मुझे, मुंझे, मुंज, मुञ, मुज्ज, मेरा, मेरे, मेरी, मुजकूं

तुहीं, तुमन, तुमना, तुज, तुझे, तुज कूं

हमन, हमना, हमी, हमारा, हमारे, हमारी

अपन, अपस, अपना, आपना, आपनें, अपस, आप, अप आदि

यही, वही, उस, इस, ईह, यथी, सोई, सू

तिस, तिसे, तिन्हन, उन्हन

किसी, किसी का

जे कोई, जू - सोई, जिसें, वह - जू

किस, किसे, किन किन, किसे - तिसे आदि

सर्वनाम के रूप समझने केलिए कतिपय उदाहरण दिये जा रहे हैं—

सूं (सू) = वह

सूं तूं शाह गंभीर गड़दा कहीर (६८)

तैं, तूं = तू

बचन सरज्या तैं जलांकूर थीं (११)

बचन मुख तल तैं किया जग रतन (२१)

इलम संग तूं गरज घन जीव तूं (५७)

तुम्हन = तुम

तुम्हन हत्त दे पान हत आप कर (६११)

हौं, मैं = मैं

न मायक डरूं हौं नपायक डरूं (८६)

हमें = हम

हमें कौन मानुस जू कारन हमन (३४४)

तिस

न घिसटें पडे पाए तिस का पताल (२६)

तिन्हन

जू मैं तुज कह्या तो तिन्हन दूरकर (८०)

तिन्हें

न राहा तिन्हें देखतें नयन बंक (१५८)

हमन

हमन बल बनेगा नबी बल सिवा (३९)

तिन्हूं

कि हैं न तिन्हूं में तुजे लेखया (८९)

ईह

हरा कर जिक्र ईह कदम राए आए (१०८)

हमन - तुमन

कि कारन हमन भोग रहनां तुमन (२४४)

तुहां

तुहाँ बाज हम पाल सक्के सू कूं (३४५)

जे

कि जे बोलनां होए म बोल दूं (७६)

अपस आप

बसा है अपस आप करतार दोस (२८१)

आप = अपना

कि जे साच माने कहूं आप गुन (२८६)

सर्वनाम के अविकृत रूप के उदाहरण देखिए—

तुझे मैं भली दिष्ट कर देख्या (८९)

बड़ा शाह वह शाह जिस शाह जग (५२)

ईहीं राख यह बात वह बात कह (९९)

न सक्की कोई नार कर राए राम (९७)

का = क्या

कि बिन मत्त कुच काम मत का करे (२५९)

परसर्ग

नवीन भारतीय आर्य भाषाओं में कारक चिह्न अथवा परसर्ग के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। यह बात दक्खिनी में देखी जा सकती है। दक्खिनी के कारक चिह्नों पर हिन्दी की बोलियों, उदभाषाओं एवं अन्य भाषाओं का प्रभाव दिखई देता है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में कारक चिह्नों की अनेक रूपता तत्कालीन भाषा की स्थिति व्यक्त करती है।

कर्ताकारक :

'मसनवी कदमराव पदमराव' में 'ने' प्रत्यय का प्रयोग कहीं भी नहीं किया गया है। यह इस बात को सत्य सिद्ध करता है कि आज से पौने छ: सौ वर्ष पूर्व हिन्दी में 'ने' प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता था। पूरब की अवधी, भोजपुरी आदि में आजकल अथवा प्राचीन साहित्य में 'ने' का प्रयोग नहीं मिलता।

यह ध्यान देने योग्य है कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' में गुजराती, मराठी तथा राजस्थानी के अनेक तत्त्व मिलते हैं। परंतु कारक चिह्न के रूप में 'ने' का तिरस्कार किया गया है। दक्खिनी के परवर्त्ती कवियों ने कहीं-कहीं 'ने' का प्रयोग किया है।

द्वितीया (कर्मकारक) : कूं

कर्मकारक में हिन्दी का प्रत्यय 'को' है। प्रस्तुत मसनवी में 'कूं' का प्रयोग किया गया है।

पडे थेप चंदा गगन सूर कूं (८३)

न गल लाव मुज कूं सदा सेव लग (८५)

संस्कृत की तरह 'ए' और 'एं' शब्द के साथ जुडे हूए रूप के कुछ उदाहरण भी मिलते हैं। यथा—

नबी बैरें दंद कीता बनार (३९)

अचल जे चलें राए तुज राए पर (५९९)

कर्मकारक के विभक्ति रहित रूप भी प्रयुक्त किये गए हैं। यथा—

इहीं राख यह बात वह बात कह (९९)

वले आज अखर मार नीकाल दे (५२९)

तृतीया (करणकारक) : ते, तें, थी, थीं, सात, सेती, से

परी देव राकस सहस छंद सूं,
सकूं जीव ते आनना दंद कूं। (६६९)

यही चित तें राव बासुक पदम (१५०)

कि हैं लोडने थी अरोगन करन (१०७)

न तैसा करूं काम जिस थी डरूं (१९१)

तलावार ले सूर दे सात मुंज
सदा सेव सेती सुने पंख अधर। (८०६)

संवर फख़रुदीं अब किसी संवर से (५०)

चलो प्यार सेती जू पर कूर दिष्ट (१७९)

क़लम ग्यान सूं तैं लिख्या भग्ग जग (५)

भगे हत कूं कांप सूं बांद जे (२२३)

चतुर्थी (सम्प्रदान कारक) कूं कू, कारन

जू करतार मुजकूं कया होए राव (१५९)

कह्या राव परधान कू कर बिसास (३६१)

न रक्खे तिसे कोए कनक आस बाज (३२०)

मुझे आप सोया रखे तब्ब लग (२४५)

हमें कौन मानस जू कारन हमन,
कि कारन हम भूक रहनां तुमन। (३४४)

पंचमी (अपादान कारक) : थी, थीं

परस कौन! सुनना करे लोह थीं (७१)

कि उस थीं बुरा कुच्च ना है कुढंग (१००)

न तैसा करूं काम जिस थी डरूं (१९१)

न था आद थीं नाग के सर पदम (२७६)

भली जा सुने दूर थीं ढोल नाद (८९९)

कि ज्यूं बाद थी होए दीवा बडा (८८५)

षष्ठी (सम्बन्ध कारक): का, के की, केरा, केरे, केरी, करा

अमोलक मुकुट सीस संसार का,
करे काम निरधार करतार का। (३२)

कुंवर शाह का शाह अहमद भुजंग (६५)

अखरनात का गोर जग देक कर (५६९)

इसी के दिस आए तिदर दोए पाए (८२३)

अपस सार के लग तरड्डी करूं (९३२)

सेवा की मया होए जिस सर उमत (८१)

कदमराव की सुद्ध जू कह सके (४५६)

खुमारी केरा दुख ले जीवनां (३२३)

मछंदर केरा पूत आखोरनात (३६६)

जू माखी केरे मुख···सब कांए (८७)

जू आखोर केरे कहूं खोल गुन (५५२)

जू जोगी केरी बुद्ध रह्या न बुद (५२७)

भिकारी करा संग पकड्या अभंग (४४२)

सप्तमी (अधिकरण कारक) : ते, पर, ऊपर, उपरार, में, मंह, मांह, मंझार

नवी यार थे यार ते झार झार (४३)

न कर दिष्ट सिंगार पर रूप पर,
करें दिष्ट तिस काम पर अंग पर। (२११)

चढावा किया धरत अक्कास पर (५६)

तल ऊपर हुवा लोक हीरानगर (२८२)

तुहीं रच्चया जग्ग उपरार तल,
तल ऊपर तुहीं कर सके आप बल। (४)

पसारे अगर पेट में बीस पाव (२९३)

अखरनात मन मंह उठ्या कर उलास (३७३)

भली जान्या राव तिस वेल मांह,
न था तीसरा कोई हम मेल मांह। (९१७)

वही बुद्ध मन मांह धरने सुहार (८००)

रोवे घाल कर मुख कोठी मंझार (७१७)

तधां थीं रह्या राव छज्जे मंझार (१०१७)

विशेषण

हिन्दी में आकारान्त विशेषणों के अतिरिक्त अन्य विशेषणवाची शब्द विशेष्य के लिंग-वचन से प्रभावित नहीं होते। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में कुछ उदाहरण ऐसे मिलते हैं जिनसे ज्ञात होता है कि विशेषणों में विशेष्य के लिंग-वचन सम्बन्धी परिवर्त्तन होते थे। डा. श्रीराम शर्मा के अनुसार इस प्रकार के रूप पुरानी दक्खिनी में अपवाद रूप में ही मिलते हैं। आलोच्य मसनवी में निम्नलिखित उदाहरण मिलते हैं—

पडी खलबली सुन्दरियां रानियां,
तल ऊपर होयां दासरियां चेरियां। (९५)

सभीं (बा) फत्त रन होए जे एक मोल (२०५)

'मसनवी कदमराव पदमराव' में खड़ीबोली में प्रयुक्त प्रायः सभी विशेषण शब्द मिलते हैं। जैसे—

अच्छा, बुरा, भला, बडा, नन्हा आदि।

संख्यावाचक विशेषण के निम्नलिखित उदाहरण प्रस्तुत मसनवी में पाए जाते हैं—

एक, इक, यक, एकस, यकस, एकस, एक, दो, दोए, दूई, तिन, चार पंच, सात (सप्त) नव, दस, अठारा, बीस, सहस, सहसर, सवा लाक, दस लाख, बीस लाख।

अपूर्णसंख्यावाचक विशेषण — सवाए।
आवृत्तिवाचक — दुगन, द्वै।
क्रमवाचक — दुसरा, तीसरा।
समुदायवाचक — दुन्हु, दहूं।

क्रिया

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त शब्दावली विविध भाषाओं के सम्मिलित तत्त्वों से युक्त है। जैसे इसमें व्यवहृत संज्ञा, सर्वनाम, अव्यय आदि हिन्दी भाषा में हुए परिवर्तन की अस्थिर दशा को सूचित करते हैं वैसे इसमें प्रयुक्त क्रियाएँ भी भाषा में उत्पन्न नवीन स्थिति को प्रकट करती हैं। यह तो बता चुके हैं कि इस मसनवी में प्रयुक्त भाषा मुख्यत: खड़ीबोली और हरियाणी है।

हरियाणी में क्रिया के साधारण रूप अनुनासिकता के साथ उच्चरित होते हैं। अनुनासिकता की यह प्रवृत्ति निम्नलिखित रूपों में पाई जाती हैं:

बोलनां, खोलनां, करनां, रहनां, आदि।

इस मसनवी की भाषा में हरियाणी के तत्त्वों की चर्चा करते समय इस पर विस्तार से बिचार किया जा चुका है।

क्रिया के साधारण रूपों की एक सूरत यह है कि धातु के साथ 'न' लगाकर बनाए गए हैं। यथा—

पढावन, मरन, उडन, करन, धरन, गमन, बिचारन, तरन इत्यादि। ब्रज और पंजाबी में इस प्रकार के रूप प्रचलित हैं।

क्रिया के विधि रूप भी विशिष्ट प्रकार के मिलते हैं। यथा—

धरे

भौंदा धरे मन बहुत दुष्ट भाव (२९३)

करें = कर अर्थ में

न चिन्ता करें नाग उस भाव तूं (३०५)

पथावें = प्राप्त कर

पथावें नबी माल धर रूम रे (८०)

पीवें, खाएं

हमें क्या जू उसका न पीवें न खाएं (११४)

कर

गुसाईं हमें जीब तुज संवर कर (२५)

देह = दे

जले जग्ग इस थीं, इसे देह धीर (३५)

देवं = दे

कहूं बोल का बोल देवं उतर (१५३)

दिखलाव

किसी ऊंच दिखलाव तल खींच ले (१८०)

'मसनवी कदमराव पदमराव' में 'सी' का अधिक प्रयोग मिलता है। उर्दू के प्रसिद्ध लेखक श्री महमूद शेरानी को मुल्ला वजही के 'सबरस' में 'सी' के भविष्यत्कालीन रूप चार स्थानों पर प्राप्त हुए हैं। डा. अबुल्लैस सिद्दीकी के अनुसार लाहौर की पंजाबी में आज भी 'सी' भविष्यत् के अतिरिक्त सामान्य वर्त्तमानकाल की सहायक क्रिया 'थां' के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है। प्रस्तुत मसनवी में भविष्यत्काल सूचक 'सी' के उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

छोड़सी, रहसी, धिकसी, संचसी, न्होसी, हंकारसी (बुलाये, बुलायेगा, बुलाता है), हारसी (हारता है, हारे)।

भविष्यत् और विधि के अन्य रूप :

लिखन = लिखें, सुनन = अगर सुनें, अगर सुनेंगे

जलो = जले (जलना से)।

क्रिया के वर्त्तमानकाल का निम्नांकित रूप मिलता है :

कहूं = मैं कहता हूं।

क्रिया का एक अन्य रूप :

कहन सके, रहन सके, बोलन सके।

सामान्य भूतकालीन क्रिया के बहुवचन रूप :

अथीं = थीं अर्थ में।

समान्य वर्त्तमानकाल का बहुवचन रूप :

अहैं = अहै का बहुवचन, हैं अर्थ में।

संयुक्त क्रियाएँ

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त संयुक्त क्रियाएँ देशज शब्द, संज्ञा, धातु इत्यादि के साथ सहायक क्रिया लगाकर बनाई गई हैं :

१. दिखावन सकूं

दिखावन सकूं बोल दिन मन्ह बनूद (४५१)

२. करन लागा

भौंदा चल्या करन लागा असूझ (७३६)

३. बिनती करन

बिन आंखें हंकारें न बिनती करन (६१०)

४. बुलन्दा करन

बुलन्दा करन धर कहन तिस कटानूं (८४०)

५. देखन पडे

तिन्हन पाय देखन पडे मुंज आज (८७३)

६. हंकारन करूं

वरस पांच (लग) ना हंकारन करूं (५१३)

७. चमक्कन लगे

चमक्कन लगे जब कतक हृत्त पर (५६)

८. अरोगन करन

कि हूं लोडने थे अरोगन करन (१०७)

९. देख सकूं

असंगत के क्यूं देख सकूं अन्याव (१५९)

१०. विचार करन सक्के

न सक्के कोई बुद्(ध) में कर विचार (१८)

संयुक्त क्रियाओं के अन्य उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

कर सके, रच्चने सक्के, सेव करें, कर दिएं, न त्रिसटें पडे, ले गए, दे दिया, लोप गया, जा बैठा, विसरी पड्या, ऊभा हुआ, ध्यान लागा, हिंड आया, टूट पड्या, मरनां पड्या, धर आई, असूज लागा, दांत कडड्या उठ्या, फांदे पड्या, बोल उठ्या, अवचिता पडी, चल्या करन लागा, देखन पडे, बिलकता पडया, कहना पड्या, बोल्या करें, मार्या डाल्या इत्यादि।

ऐसी सहायक क्रियाएँ भी पायी जाती हैं जिनमें फारसी-अरबी के साथ हिन्दी की सहायक क्रियाएँ जोडी गई हैं। यह प्रवृत्ति दक्खिनी के परवर्त्ती कवियों में विशेष कर मुल्ला वजही की कालजयी गद्यकृति 'सबरस' में अधिक पाई जाती हैं। 'कदमराव पदमराव' में व्यवहृत रूप द्रष्टव्य हैं—

१. मुसख़्ख़र हुआ :

अतारिद मुसख़्ख़र हुआ ले क़लम (५४)

२. मुसख़्ख़र किया :

मुसख़्ख़र किया सूर दे हत अलम (५४)

सामान्य भूतकाल बनाने केलिए क्रिया के साधारण रूप का 'ना' हटाकर 'या' लगाया जाता है। यह दक्खिनी हिन्दी की सहज प्रवृत्ति रही है। यथा—

रच्च्या (रचा), लिख्या, सर्‌या, सिरज्या, भर्या आन्या, बोल्या, कह्या, लेख्या, रह्या, मार्‌या, सुन्या, चल्या, भग्या (टूटा) परख्या, उठ्या, हंकार्‌या, बूझ्या, पूच्या, (पूछा), बान्ध्या, संहार्‌या, विसार्‌या, धर्‌या, जान्या, बूछ्या, मिल्या, रख्या, सड्या, काट्या, सट्या, समझ्या, सौंध्या, मील्या (मिला), दिस्या। इन भूतकालिक रूपों में हरियाणी से समानता पाई जाती है।

पंजाबी से प्रभावित निम्नलिखित भूतकालिक रूप भी पाए जाते हैं—

दीते = दिए

यही बातरन थीं दीते सू रतन (१२)

कीता = किया

नबी बैरें दंद कीता बनार,
अंगुल हत कर चंद कीता दो फाड़। (३९)

कया = कह्या, कहा

जू करतार मुजकूं कया होए राव (१५९)

करना और देना क्रियाओं के दो दो भूतकालीन रूप मिलते हैं :

करना — किया, कीता
देना — दिया, दीता

खडीवोली की तरह क्रियाओं के निम्नलिखित भूतकालीन रूप भी काफी संख्या में मिलते हैं :

कर सके, रखे, ले गए, उजाला किया, उजाला हुआ, चढावा किया लोप गया, गया, गई, गिर पड़ी, मरी, खिले, लिखा, दिया, आया, भया खडा था, चढाया, पढाया, पढा, लिया, बुलाया, पडे, उठे, दिखाया, गया था इत्यादि।

अन्य भाषाओं से स्वीकृत कतिपय क्रियाओं के भूतकालीन रूप देखिए :

उचाया (उठाया), सर्‌या (पूरा हुआ) सिरज्या (पैदा किया), दिस्या (दिखाई दिया), ऊभे (उठे), आन्या (लाया), अंपडे, अपडे (पहुँचे) आखे (कहे), पिन्हाई (पहनाई), हंकार्‌या (बुलाया), सट्या (डाला, फेंका), अड्या (रुका), दिठा (दीख पडा)।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह विदित होता है कि क्रिया के भूतकालीन रूप भी अनेकता लिए हुए हैं। एक ही शब्द के विभिन्न रूप इसके उदाहरण हैं। यथा—

करना के भूतकालीन रूप हैं करा, किया, कीता। लिखना के भूतकालीन रूप हैं लिख्या, लिखा।

भविष्यत्‌काल में गा, गे, गी में अंत होनेवाले रूप 'मसनवी कदमराव पदमराव' में दो एक ही मिलते हैं। किन्तु दक्खिनी के परवर्त्ती कवियों ने उपर्युक्त रूपों का प्रयोग किया है। प्रस्तुत मसनवी का उदाहरण द्रष्टव्य है :

भली एक पतिवरत निकलेगी दोए (२३९)

प्रस्तुत मसनवी में भविष्यत्‌काल में या तो गा, गे, गी छोड़ दिए गए हैं या धातु के साथ सी, से, सूं जोड़कर बनाए गए हैं :

रहसी = रहेगा
न रहसी जू दीसे कुछू नक्श नांव (२१८)

न्होसी = न होगा, नहीं होता
न्होसी पांच अंगुल समान (२०२)

हंकारसी = बुलावे, बुलावेगा, बुलाता है
कि हंकारसी राव मुंज जद्द कद (२६९)

करसूं = करूं, कर सकता हूं
न हों छोड तुज पाए करसूं गमन (६२४)

धातु के साथ ए, एं, ऊं प्रत्यय लगाकर बनाए गए भविष्यकालीन रूप अधिक मिलते हैं। वर्त्तमानकाल भी भविष्य के जैसे रूप में मिलता है।

सहायक क्रिया

है, अहै, अहैं, अथा, आथा, अथे अथी, अछे, अच्च, आछे (रहे), होए, होई, रहै, राहा आदि ।

पूर्वकालिक कृदन्त :

जोतकर, जड़कर, दिष्टकर, घंटकर, कोपकर, गंवाकर, हिढकर, बैसकर, राजकर, बिचारकर आदि ।

पूर्वकालिक कृदन्त का एक और रूप है :

न मद पीव कर कोई क्षन सांचसी (३२६)

पथाया बहुत मान दे नागराव (३४१)

द्वैत पूर्वकालिक कृदन्त का उदाहरण भी मिलता है :

तिन्हन दूर कर कर मुझे दे उतर (६०)

प्रेरक क्रियाएँ :

बुलाव आज परिवार कपड़े दिलाव (३५२)

किसी ऊंच दिखलाव तल खींच ले (१८०)

पिलावे तुझे आन मत मद्द फूल (३२२)

अव्यय

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त अधिकांश अव्यय खड़ीबोली में भी प्रयुक्त होते हैं। कुछ अव्यय हिन्दी से सम्बन्धित उपभाषाओं और बोलियों में व्यवहृत होते हैं । यथा—

१. विरोध दर्शक

वले: वले हौं कहूं देख उसका न्याव (१७८)

२. संकेतवाचक व्यधिकरण

अगर: अगर चोर वह होए या साह (७४९)

जमारे : जमारे लिखें सब फरिश्ते कि जे (२३)

३. पंजाबी से प्रभावित कालवाचक

अझूं : मवरवुध जाने अझूं आप राव (७२१)

४. स्थानवाचक

अंघें : बिन अंघे हंकारे न बिनती करन (६१०)

पिच्छें : रहनहार पिच्छें रहनहार तूं (३)

५. संयोजक

होर : सयानां कहावे होर ईता अयान (६९१)

और : नहीं आदमीं और भी आदमीं (२१०)

कि और एक विनती करूं राव तुज (३३९)

६. मराठी तथा गुजराती से गृहीत अवधारण वाचक

च : न भावे मुझे वह जू मेरा च बाप (२२८)

७. नकारार्थक नको

नको : डिढाई नको कर......जीव दीट (८३५)

नहीं : असंगत कि वह मनलगे भी नहीं (२२२)

८. स्थानवाचक और सम्बन्धवाचक

अगला : कि जे बान अगला हुवा काज कूं (२०९)

आगला : करे आगला, तुज करे सेव कोए (१४)

९. अबधी आदि हिन्दी से सम्बन्धित बोलियों से प्रभावित तथा प्राप्त अव्यय

बाज : तुहीं ऊंच अंबर सर्‌या वाज अधार (१०)

१०. क्रियाविशेषणवाची अव्यय

स्थानवाचक क्रियाविशेषण 'आगे' के निम्नांकित रूप इस काव्यग्रन्थ में मिलते हैं :

अंगे : धर अंगे सुमानुस रहै मान पर (६४३)

अंग्गे : पथावे हमां के न अंग्गे बुलाव (३०९)

अंघें : कि जे राव अंघें बिनाती करूं (३०७)

अंग्घे : रचनहार अंग्घे रचनहार तूं (३)

इसी प्रकार पिच्छें, पाछे, पिछें आदि 'पीछे' के भिन्न रूप इस काव्य में प्रयुक्त हुए हैं। 'पाछे' राजस्थानी रूप है।

पिच्छें : रहनहार पिच्छें रहनहार तूं (३)

पाछे : सदाकाल पाछे रहै मुंज नीर (२०४)

उपरार : तुहीं रच्च्या जग्ग उपरार तल,

ऊपर : तल ऊपर तुहीं कर सके आप बल। (४)

तल : बचन मुख तल तैं किया जग रतन (२१)

तलहार : न मुंज सुध ऊपर न तलहार सुध (१४०)

तल्हें : कोई मर पडे बैर्या के तल्हें (७५६)

'नीड़े' का प्रयोग राजस्थानी और पंजाबी में भी मिलता है।

नीडे : करे तिस नीड़े समंद एक बुंद (७६९)

पास : दिसावर पुरुख एक दूत आन पास (२८९)

संमुख : मरे मलमले जीव संमुख नांव (२२७)

कीधर : कहां लग कहूं जाए कीधर पडूं (७३७)

चहूंधिर : चहूंघिर दिठा लोग सोता पदम (१८५)

११. रीतिवाचक अव्यय

कहां : कहां जीव जोगी कहां राव तन (७२२)

कहीं : दैहर कन कहीं देन्ह रखें संभाल (७२६)

जहां...तहां : जहां जाए तेरा तूं बीते बसेव,
तहां हौं रकत आपना देवं बसेव। (६२७)

वहां	:	शुक्र दर वहां उस्तरा आरतीं	(६२५)
जहूं…त्यहूं	:	गंवावें जहूं त्यहूं कि मैं आप नयन	(८०२)
जघां…तघूं	:	जघां मैं कह्या था न कर गरब राव, तघूं न सुन्या बोल मेरा दो नखाव।	(९५५)
जघां…तघां	:	जघां थीं मील्या अखर आज लग, तघां थीं कहूं जीव (ए) जा गया कू लग	(९७१)
ज्वें…त्वें	:	ज्वें तैं किया जीव पर जीव सूं, त्वें लेव रस मिरत भी पीव सूं।	(४९६)
त्यों	:	न चेला रहै कोई त्यों हौं रहूं	(४४९)
यों…त्यों	:	असंगत सब्द मुंज हिएं यों सले, न तिनका सले आंक में त्यों सले।	(५५६)
यूं…ज्यूं	:	भौंदा मेरी दिष्ट तल यूं दिसे, कि कसपत पड्या भूईं ऊपर ज्यूं दिसे।	(३०२)
तहां	:	न जानें कि बैरी तहां तन धरे	(३१३)

१२. कालवाचक अव्यय

आज	:	भली तैं कह्या आज रामान मुंज	(१४२)
अझूं	:	मवरबुध जाने अझूं आप राव	(७२१)
अत	:	छुरी अत कुंदन सी कि जे होए	(१७०)
इत्त	:	कि जे दीधे इत्त वल हत्त रू	(३१७)
इताल	:	नकर सूं तदर दान देवं इताल,	
इत्ताल	:	जू इत्ताल रावां अनावे संभाल।	(५९०)
ईता	:	न करता जे आखोर ईता बिचार	(५६६)
कदीं	:	सू सत्ती कदीं होए धन हेवा सूँ	(३४७)
तद	:	वली थी बहुत बुद्ध तद आगली	(६६)
जद्द कद	:	कि हंकारसो राव मुंज जद्द कद	(२६९)

कधीं	:	डरूं न कधीं दुक्क जोबन बचाए	(१९३)
तधां	:	न जान्या तधां राव ऐसा अनूज	(४५१)
अब	:	न अब थीं किसी नार पत्यावनां	१६५)
अब्ब	:	कहूं अब्ब कुच भेद परदेसना	(३१८)
अबी	:	अबी रात चित खूंट कूते नगर	(५७२)
जब	:	कि जब सर न होवे वह कधीं थिर न होवे	(३३२)
कभीं	:	सभी रात जू चोर चोरी करे, कभीं भी तो अग रात लक आस धरे।	४५३)
तभीं	:	तभीं मुख अकर जोग सुन मूंद लेह	(७६७)

१३. कालवाचक - अवधिसूचक

जब लग	:	कि जब लग पडे एक सिरकार धाए	(१८५)
अलो लग	:	न सुन्या अलो लग कि इस वरतमान	(२१४)
जमजम	:	कि जमजम भलाई क़फा तुज रहै	(२१८)
कब्ब लग	:	तिरी मत होई मत्त पर कब्ब लग।	(२४०)
जद् कद	:	कि हंकारसी राव मुंज जद् कद	(२६९)
जब....तब	:	कि जब फूल ले राव तब घूं घाव	(१४९)
		पकड हिंड आया अखरनात जब, सुखी होए बैठा कदमराब तब।	(४२८)
जमारे	:	जमारे लिखें सब फरिश्ते कि जे	(२३)
जरम	:	मुहम्मद जरम आद बुनियाद नूर	(३३)
अंत लग	:	ओ दो अंत लग राव अपस राव बल	(४७)
जब (जब)	:	न जब (जब) फीर आवे अखरनात चुक	(४२७)
जधूं लग	:	जधूं लग अखर ना मिल्या (था) कनंद,	
तधां लग	:	तधां लग विसारे तो मैं राज छंद।	(५२६)
आज लग	:	करूं आज लग पाए तल पर थमीं	(३८१)
कधां लग	:	कधां लग भंबीरी हुआ जग फिरूं	(७३९)

कब लग	:	न जानूं बला यह कब लग फिराए	(७५१)
जधां···तधूं	:	जधां मैं कह्या था न कर गरब राव, तधूं न सुन्या बोल मेरा दो निखाव।	(९५५)
जधां····तधां	:	जधां थीं मिल्या अखर आज लग तधां थीं कहूं जीव (ए) जा गया को लग	(९७१)
जरम लग	:	सिकाया क़लम भाग लिख जरम लग	(५)
लग	:	बिनाती की तिन पहर रात लग	(३०६)

यह उल्लेखनीय बात है कि 'मसनवी कदमराव पदमराव' में तक, तलक, तलग आदि अव्यय नहीं मिलते जो दक्खिनी की परवर्त्ती रचनाओं में बहुधा प्रयुक्त किए गए हैं। प्रस्तुत मसनवी में 'लग' रूप अकेले प्रयुक्त किया गया है और अन्य प्रत्ययों के साथ भी। ऊपर उद्धृत उदाहरण इसके प्रमाण हैं।

तल, तलें, तलार आदि अधिकरण कारक के रूप दक्खिनी के परवर्त्ती कवियों ने काफी संख्या में प्रयुक्त किए है। किन्तु निज़ामी ने तल, तल्हें, तलहार आदि रूपों का प्रयोग किया हैं। इन रूपों से प्रकट होता है कि आरम्भ से तल रूप के साथ तल्हें, तलहार आदि रूप भी प्रचलित थे। बाद में 'ह' को छोड़कर 'तल' रूप के तर्ज में 'तलें' और 'तलार' बनाए गए।

तल	:	बचन मुख तल तैं किया जग रतन	(२१)
तल्हें	:	कोई मर पड़े बैर्या के तल्हें	(७५६)
तलहार	:	न मुंज सुध ऊपर न तलहार सुध	(९४०)

मंझार (संस्कृत) (मध्य) 'आर' सम्बन्धकारक का चिह्न :

मंझार	:	रोवे घाल कर मुख कोठी मंझार	(७१७)
मंह	:	अखरनात मन मंह उठ्या कर उलास	(३७३)
मांह	:	करे दिष्टतल हित मन मांह दंद	(२४१)

अव्ययों के अन्य उदाहरण भी द्रष्टव्य हैं :

पन	:	न बोले किसी सूं पन आखोर सूं	(४१४)

संग	:	भिकारी केरा संग पकड्या अभंग	(४४३)
सात	:	तलावार ले सूर दे फलक नवसंघात	(८)
बिन	:	करन राए का सीस बिन राज दंद	(१४७)
घुरे (चाहे)	:	घुरे कोई उपचार न चार पाप	(२२८)
जद घुरे···	:	तद घुरे (जब चाहे···तब चाहे)	
		सरब नक्ल मीतरपना जद घुरे,	
		धनी राजकूं पीवनां तद धुरे।	(३२५)
गर = अगर	:	सही बुध गर तूं जू करतार दे	(२९७)
भी	:	न जानूं कि तुज भी कधीं बाह भूल	(३१२)
बी = भी	:	करे चित्त पर देक वह बी (बर) डरे	(९८)
कारन	:	हमें कौन मानस जू कारन हमन,	
		कि कारन हम भूक रहनां तुमन।	(३४४)
यकायक	:	यकायक यही कया थ्या राज धर	(७१०)
अंदर	:	अखर जीव जोगी न अंदर शिताब	(४८३)
भितार(भीतर)	:	मगर गिर पडी पाए बासुक भितार	(१०६)
बहर (बाहर)	:	न आनूं बहर मुक तुज मुक बोल	(४३७)
बाहर	:	छजे बाज बाहर धरे एक धाव	(४८४)
भार (बाहर)	:	जू शीशे केरा भार रक्खे कपाल	(८४०)
फिर	:	जू फिर कर नरक आपने आप खाए	(५८५)
पहर (फिर)	:	पहर संजर्‍या आपनें तन संवर	(४७०)
फीर (फिर)	:	न जब (जब) फीर आवे अखरनात चुक	(४२७)
पास	:	कि रानी गई पास राजे कदम	(१५०)
कन (पास)	:	कहै फख़्रुदीन एक साचा बचन,	
		भले परखिए जे करे कोई कन।	(४८२)
बीच	:	कदमराव सुन बीच अखरनात में	(४१०)
घीर	:	कि चुक घीर रात मुंज देक खाए	(१३१)
बहुत	:	सुन्या था कि नारी धरे बहुत छंद	(१५५)

उद्देश्यवाचक 'कि' का प्रयोग द्रष्टव्य है :

कि ते वेल बिलगत करन राज कर (३१)
कदमराव कह्या कि धन बात सुन (२२१)

'या' के अर्थ में 'कि' का प्रयोग आधुनिक है । इसका सबसे पुराना प्रयोग 'मसनवी कदमराव पदमराव' में मिलता है :

कदमराव हों कि पदमराव होए (३४३)

उद्‌गारवाचक अव्यय

ए : कवन चत्तरी चितरे ए निगार (१८)

प्रस्तुत मसनवी में 'चाहिए' का प्रयोग भी मिलता है :

जहां चाहिए साच करनां जहार,
न करनां तहां जाए झूटा बहार। (९४४)

न चाए (न चाहिए) :

नवाला अधिक मुक्ख लेनां न चाए,
न जोगत अपस काम करनां न चाए। (२३७) □

४. आधुनिक हिन्दी का आदिकालीन गद्य

बताया जाता है कि खड़ीबोली. के गद्य के विकास का प्रारम्भ भारतेन्दु काल से हुआ। अमीर खुस्रो, कबीर आदि इने-गिने कवियों ने ही उत्तर में खड़ीबोली को अपने विचारों की वाहिका बनाई थी। इन कवियों के पश्चात् उत्तर में खड़ीबोली साहित्य के गौरवपूर्ण पद से अपदस्थ हो गई। ब्रज और अवधी दोनों खडीबोली का स्थान ग्रहण कर साहित्य के क्षेत्र में अग्रसर हुई। यह बडा ही आश्चर्यजनक लगता है कि खड़ीबोली का विकास उसी समय दक्षिण में प्रारम्भ हुआ जिस समय उसका प्रवाह उत्तर में लगभग समाप्त हो गया था। पिछले अध्यायों में हम देख चुके हैं कि दक्खिन में खड़ीबोली साहित्य की कितनी सशक्त वाहिका हो गई थी और 'मसनवी कदमराव पदमराव' जैसी काव्यकृति में वह किस निखार के साथ प्रकट हुई।

अब हमें यह देखना है कि जिस खड़ीबोली को आधुनिक काल में साहित्य के माध्यम होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसमें गद्य का निर्माण कबसे हुआ और कहाँ हुआ। जब हम प्रस्तुत प्रश्न का समाधान ढूँढते हैं तब हमें ज्ञात होता है कि गद्य का प्रारम्भ और विकास भी सर्वप्रथम दक्खिन के हिन्दीतर क्षेत्र में ही हुआ है। खड़ीबोली में सर्वप्रथम गद्य ग्रन्थ लिखने का श्रेय दक्खिनी के वरिष्ठ सूफ़ी आचार्य शेख बुरहानुद्दीन जानम को दिया जाना चाहिए। जानम का 'कलिमतुल हक़ाइक़' हिन्दी गद्य का प्रथम उदाहरण प्रस्तुत करता है। जानम का 'इरशादनामा' काव्य बहुत ही प्रसिद्ध है जिसमें तसव्वुफ़ और भारतीय वेदान्त और दर्शन के ऐसे संगम-स्थल मिलते हैं जो सांस्कृतिक समन्वय के प्रभावशाली उदाहरण हैं।

जानम (सन् १५८२ ई.) ने गद्य और पद्य दोनों विधाओं पर अपनी लेखनी चलाई। वजही और अमीन ने भी समान अधिकार से दोनों विधाओं को समृद्ध किया।

'इरशादनामा' जानम का काव्य है और 'कलिमतुल हक़ाइक़' गद्यग्रन्थ। इन दोनों की रचना-शैली का विवेचन करने पर पता चलता है कि जानम ने थोडे-से परिवर्त्तन के साथ अपने पद्यबद्ध ग्रन्थ को गद्यबद्ध बनाया था। 'कलिमतुल हक़ाइक' की पंक्तियाँ स्वल्प परिवर्त्तन से पद्य में परिणत हो जाती हैं। अमीन और वजही की गद्य-कृतियों की रचना-पद्धति में व्यवस्था और क्रम है। अल्प या अधिक परिवर्त्तन से इनकी गद्य-रचनाएँ पद्य में रूपान्तरित नहीं की जा सकतीं। 'इरशादनामा' और 'कलिमतुल हकाइक' के एक उदारहण से यह बात स्पष्ट हो जाती है। 'इरशादनामा' की पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

सहज सहज सू उसका ठार
सहज हुआ है उसे थे बार
जद कुछ न था, था वही
शरीक ना उस दूजा कोय
ऐसा हाल जे समजे कोय
जिस पर करम खुदा का होय
यह सब गूजरी किया बयान
कर हक आइना दिया नुमान
कलिमत यक सब किया बयान
देख खुलास्स : होय इयान।

'कलिमतुल हकाइक' की निम्नांकित पंक्तियों से पूर्वोद्धृत पद्यांश को मिलाइए:

'सहज सहज सू तेरा ठार व सहज हुआ भी तूज थे बार। जघां कुछ न था भी था तुहीं, दूजा शरीक कोई नहीं। ऐसा हाल समजना खुदा थे खुदा कूं, जिस पर करम खुदा का होय। सबब यू जबान गूजरी ऐं किताब 'कलिमतुल हकाइक' खुलास्स: बयान'।

उपर्युक्त उद्धरण की तरह के अन्य अनेक उद्धरण प्रस्तुत किए जा सकते हैं। जानम अपनी पद्यशैली की, गद्य रूप में, ज्यों-की-त्यों नकल करते हैं। 'कलिमतुल हकाइक' में 'इरशादनामा' के बहुत-से पद्य भी जानम ने उद्धृत किए हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि जानम के समय खड़ीबोली में कोई गद्यग्रन्थ नहीं था। उस समय गद्य का कोई व्यवस्थित तथा सुगठित रूप निखर नहीं पाया था। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जानम खड़ीबोली (दक्खिनी हिंदी) में गद्य लिखनेवाले प्रारम्भिक लेखकों में हैं, जिनके सामने गद्य-विधा का कोई आदर्श नहीं था। 'इरशादनामा' और 'कलिमतुल हकाइक' के तुलनात्मक विवेचन करते समय हम देखते हैं कि केवल भाव की दृष्टि से ही नहीं अपितु भाषा तथा रचना-शैली की दृष्टि से भी दोनों परस्पर साम्य और सादृश्य रखते हैं। प्ररम्भिक प्रयास होने के कारण जानम की गद्यशैली में निम्नांकित त्रुटियाँ परिलक्षित होती हैं :

१. हिन्दी गद्य लिखते-लिखते वे फारसी भी लिखते हैं। (द्रष्टव्य: कलिमतुल हक़ाइक, पृ. ६०, ८४)

२. एक वाक्य हिन्दी में और दूसरा फारसी में लिखते हैं। (द्रष्टव्य : पृ. ३८, ४५, ५१, ५३, ५४, ५५)

३. वाक्य का प्रारम्भ फारसी में करते हैं और शेष अंश हिन्दी में (द्रष्टव्य: पृ. ५२, ९५, ९८, १०८)

४. सामान्यतया संयोजक अव्यय फारसी का ही प्रयुक्त करते हैं। (द्रष्टव्य: ५०, ७७)

जहाँ ठेठ हिन्दी का प्रयोग किया गया है, वहाँ तीन विशिष्ट प्रवृत्तियाँ देखी जा सकती हैं :

१. फारसी-शब्दों का अनुवाद-रूप।

२. पद्य में वाक्य-विन्यास का जो क्रम रहता है, वही क्रमगद्य में भी अपनाया गया है। यह इस तथ्य की पुष्टि करता है कि जानम के सामने कोई गद्यग्रन्थ नहीं था।

३. एक विशिष्ट संयोजक के स्थान पर दूसरे का प्रयोग करते हैं।

अब हम दक्खिनी हिन्दी के दूसरे गद्यकार अमीनुद्दीन अली आला की गद्य रचनाओं पर विचार करेंगे ।

बीजापुर की पवित्र भूमि ने ऐसे वरिष्ठ सूफ़ी आचार्यों को जन्म दिया है, जिनकी अनमोल वाणी ने तसव्वुफ की अक्षय निधि की शोभा बढ़ायी है। बीजापुर के सूफ़ियों में मीराँजी शम्सुल उश्शाक़ की परम्परा की गरिमा अपूर्व है। लगभग ढाई तीन सौ वर्ष तक मीराँजी की परम्परा के सूफ़ी-संतों ने जन-मानस में अपना जादू भरा था। दक्खिन के लोक-जीवन में इन सूफ़ियों को जो स्थान प्राप्त हुआ था उसका दूसरा उदाहरण और कहीं दिखाई नहीं देता ।

ख्वाजा बन्देनवाज़ के पश्चात् दक्खिन में जन-हृदय को मोहित करनेवाले सूफ़ी अमीन ही थे। अमीन की परम्परा का कोई भी सूफ़ी ऐसा नहीं गुज़रा जिसने हिन्दी की सेवा न की हो ।

यह बड़ा ही विचित्र लगता है कि वरिष्ठ सूफ़ी आचार्य एवं असंख्य गद्य-पद्य कृतियों के लेखक अमीन के जीवनवृत्त की जानकारी कहीं से भी नहीं मिलती। डा. हुसैनी शाहिद के अनुसार अमीन की जन्म तिथि सन् १००७ हि. है ।

जैसा कि ऊपर बताया गया है अमीन ने ग्यारह पद्य ग्रन्थ और नौ गद्य ग्रन्थ रचे हैं। उनके गद्य ग्रन्थों में 'कलिमतुल असरार' नामक ग्रन्थ की कतिपय पंक्तियाँ उद्धृत की जा रही हैं—

अरे भाई ला कहते हैं नहीं कूँ ओ नहीं क्या है एसे समझना भी कि लोकाँ बोलते हैं कि अव्वल अदम था सू उस अदम सूँ आलम वजूद हुआ होर नाबोद में सूँ सब जहान बोद में आया ।

x x x x

अरे भाई, नीचे ज़मीन होर ऊपर आसमान है। इस ज़मीन होर आसमान के दरम्यान जू चीज़ नहीं है उस नहीं मेंच हमें और तुम्हें चलते फिरते हैं ।

x x x

जब पीर ने मुरीद कूँ कलिमा के माने का मुशाहिदा बताए तो मुरीद के दिल के घर में आनन्द हुआ होर मुरीद ने उस आनन्द की खुशहाली सूँ मस्त हुआ।

अमीन की गद्य-कृतियों का विवेचन करें, तो पता चलेगा कि खड़ीबोली का व्यवस्थित रूप ही उन्होंने प्रस्तुत किया। उनकी भाषा पर फारसी का गहरा प्रभाव नहीं दिखाई देता। यह स्वाभाविक ही है कि तसव्वुफ़ के निरूपण को अधिक स्पष्ट करने केलिए उन्हें कतिपय अरबी-फारसी के पारिभाषिक शब्दों को ग्रहण करना पड़ा। अमीन के गद्यग्रन्थों के अध्ययन से निम्नांकित तथ्य हमारे सामने आते हैं—

१. अमीन ने फारसी-गद्य का अनुकरण नहीं किया।

२. अमीन ने पद्य के सहारे अपने गद्य नहीं लिखे।

३. जानम ने गद्य लिखते-लिखते पद्यशैली में गद्य लिखे। यह प्रवृत्ति अमीन में नहीं पाई जाती।

४. जिस ग्रन्थ में अमीन ने पंचतत्त्व और तन्मात्राओं के गुणगान किये हैं, उसमें अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय देते हुए अलंकृत शैली का प्रयोग किया है। शैली को रोचक तथा आकर्षक बनाने तथा कलापक्ष को उचित रूप से सँवारने में उन्हें सफलता मिली है। अमीन की अलंकृत गद्यशैली में भी पद्यशैली का किंचित्-मात्र भी प्रभाव नहीं दिखाई देता। बीजापुर में लिखित गद्यग्रन्थों के प्रतिनिधि ग्रन्थ के रूप में अमीन का 'कलिमतुल असरार' माना जा सकता है।

मुल्ला वजही :

अमीन के समकालीन गद्यलेखक वजही थे। आप गोलकुण्डा के यशस्वी साहित्यकार थे। वे साहित्य की दोनों विधाओं-गद्य तथा पद्य पर समान अधिकार के साथ लेखनी चलाने में सफल हुए। 'सबरस' उनकी सर्जना-शक्ति तथा अपार प्रतिभा का ज्वलंत उदाहरण है। अमीन के 'कलिमतुल असरार' की भाँति 'सबरस' व्यवस्थित एवं सुगठित गद्यशैली प्रस्तुत करता है।

खड़ीबोली की समस्त विशेषताओं को अपने में समेटते हुए 'सबरस' हमें अपनी ओर आकृष्ट करता है। भाषा और भाव की दृष्टि से 'सबरस' के अध्ययन अनुशीलन करने पर निस्सन्देह हम यह स्वीकार करेंगे कि दक्खिनी और उत्तरी हिन्दी में, मध्यकाल में ऐसा दूसरा गद्य निर्मित नहीं हुआ, जो 'सबरस' से समता रखता हो।

वजही ने 'सबरस' के अतिरिक्त 'ताजुल हकाइक़' नामक एक और गद्यकृति की रचना की है। विश्व साहित्य के प्रारम्भिक निबन्धार के रूप में में भी मुल्ला वजही का नाम लिया जा सकता है। इसलिए निबंध-कला के प्रवर्त्तक के रूप में वजही के व्यक्तित्व का बिश्लेषण किया जा रहा है।

वजही : निबन्ध - कला के प्रवर्त्तक

प्रत्येक नई चीज़ का स्रोत पश्चिम में ढूंढ़ना हमारी आदत सी हो गई है और इस दृष्टि से हम निबन्ध को भी पाश्चात्य साहित्य के सम्पर्क से प्राप्त साहित्यिक विधा मानते आ रहे हैं। हिन्दी के लब्धप्रतिष्ठ विद्वानों ने शोकगीत को पश्चिम की देन बताकर अंग्रेज़ी की एलिजी के साथ हिन्दी की शोकगीत-परम्परा को जोड़ने का प्रयास किया। किन्तु, अब यह बात निश्चय के साथ स्वीकार कर सकते हैं कि शोकगीत की परम्परा हिन्दी की दक्खिन में प्रचलित बोली दक्खिनी में फूट निकली। दक्खिनी के प्रसिद्ध सूफ़ी आचार्य एवं कवि बुरहानुद्दीन जानम (सन् १५८२ ई) ने अपने पिता मीरांजी की मृत्यु पर जो शोकगीत लिखा उसे हिन्दी का प्रथम शोकगीत माना जा सकता है। तत्पश्चात् दक्खिनी के असंख्य कवियों ने कर्बला की दुखद घटना (इमाम हसन, हुसैन के शहीद होने की घटना) को लेकर अनेक शोककाव्य लिखे।

यह हम बता चुके हैं कि निबन्ध को भी आँगल साहित्य की देन बताया जाता है। किन्तु, जब हम दक्खिनी हिन्दी के महान् गद्यकार मुल्ला वजही के कालजयी गद्य रत्न 'सबरस' पर दृष्टिपात करते हैं तब हमें यह बात माननी पड़ती है कि वजही हिन्दी के प्रथम निबंधकार ही नहीं बल्कि विश्वसाहित्य को सर्वप्रथम निबंध-बिधा से परिचित करानेवाले संसार के तीन मूर्धन्य निबन्धकारों में एक हैं।

वजही फ्रेंच निबंधकार मैक्केल डी मोन्टैन (Michael De Montaign सन् १५३३—१५९२ ई.) और अंग्रेज़ी निबंधकार फ्रान्सिस बैकन (Francis Bacon सन् १५६१—१६२६ ई.) के समकालीन हैं। अंग्रेजी के निबंध तो फ्रान्सीसी निबंध के ऋणी है। जॉण फ्लोरियो (John Florio) ने मोन्टैन के निबन्धों को अंग्रेज़ी में रूपान्तरित किया। बैकन ने अठावन विषयों पर निबंध लिखे। वजही ने इकसठ विषयों पर निबंध लिखे।

वजही के निबंधों की विशेषता—

वजही की निबन्ध-कला की उत्कृष्टता को जानने केलिए आवश्यक है कि उनके निबन्धों की तुलना उनके समकालीन उपर्युक्त निबन्धकारों के निबन्धों से की जाए।

वजही की निबन्धकला का एक अति संक्षिप्त परिचय ही दिया जाएगा। वजही का गद्य साहित्य इतना गंभीर और उत्तम कोटि का है कि उसका स्वतंत्र अध्ययन किया जाना चाहिए। हिन्दी के गद्य-साहित्य के विकास में वजही का योगदान सुवर्णाक्षरों में अंकनीय है। किन्तु, खेद की बात है कि खड़ीबोली की दक्खिन में प्रचलित दक्खिनी में अपने विचार अभिव्यंजित करनेवाले महान् कवि और महान् गद्य-लेखक वजही के नाम से भी हम परिचित नहीं हैं। 'सबरस' में काव्य इतना भरा पड़ा है कि उसे 'गद्य काव्य' कहना ही अधिक समीचीन होगा। 'सबरस' में मानसिक भाव पात्रों के रूप लिए आए हैं। फारसी में लिपिबद्ध होने से यह हिन्दी के विद्वानों की आँखों से ओझल रहा। अब हैदराबाद की 'दक्खिनी प्रकाशन समिति' ने इसे नागरी में लिप्यन्तरित करके प्रकाशित किया है।

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि मुल्ला वजही विश्व के प्रारम्भिक निबन्धकारों में स्थान पाने के अधिकारी कैसे बनते हैं? वजही की जन्मतिथि के बारे में विद्वान एकमत नहीं हैं। मौलवी नसीरुद्दीन हाशमी के अनुसार सन् १५८० ई. में वजही की अवस्था २५ वर्ष की थी। इसी वर्ष इब्राहीम कुतुब शाह की मृत्यु हुई थी। नूरुस्सईद अख़तर ने स्व सम्पादित 'ताजुल हकाइक' (वजही का एक अन्य गद्य ग्रन्थ) की भूमिका में वजही की जन्मतिथि की चर्चा करते हुए यह स्पष्ट किया है कि सन् १५६६-६७ ई. में वजही पैदा हुए। वजही का असली नाम उर्दू के प्रसिद्ध शायर गालिब की तरह 'असदुल्ला' था

और वजही उनका उपनाम है। वजही अपने प्रसिद्ध प्रेमाख्यानकाव्य 'कुतुब मुश्तरी' में अपनी जन्मभूमि के प्रति श्रद्धा प्रकट करते हुए लिखते हैं—

दकन सा नहीं ठार संसार में।[1]

x x

दकन है नगीना अंगूठी है जग।[2]

दक्खिन का गोलकुण्डा ही आप का जन्मस्थान है।

बचपन में अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पडीं। दुख के दिनों में विचलित न होकर बडे धैर्य के साथ आगे बढ़े। गोलकुण्डा में आप 'मलिकुश्शोरा' के महान् पद से विभूषित हुए। 'चिश्तिया' परम्परा में दीक्षित वजही महान् सूफ़ी संत भी हैं। इनके समकालीन दक्खिनी कवि मुहम्मद कुली कुत्बशाह और मुल्ला गवासी हैं।

वजही के दो गद्य ग्रन्थ हैं—'सबरस' और 'ताजुलहक़ायक'। 'ताजुल-हकायक' में तसव्वुफ की गूढ़ एवं दार्शनिक बातों को सरस रूप में समझाया गया है।

वजही के निबन्धों को निम्नलिखित शीर्षकों में रखा जा सकता है—

खुदा, खुदा की खुदाई, अनलहक, नेकी, शुक्र होर सब्र, मैदान जंग, मर्द, हिम्मत, दुनिया, माँ बाप, भले बुरे, दानाँ होर नादान, बड्याँ होर न्हन्याँ (बडी और छोटी), झूटे सच्चे (झूठे सच्चे), दाने-दीवाने, राज (रहस्य), दुशमन, मँगनहारा (माँगनेवाला), बेगी (जल्दबाजी), होशयारी, दिन, अक्ल, इश्क़, हुस्न (सौन्दर्य) राग, शराब, इश्क़ जलना है इश्क़ तपना है, आशिक (प्रेमी))की आँख का पानी, अँखियाँ, दीवान, विसाल (मिलन), औरत, मर्द-औरत, असील औरताँ इत्यादि इत्यादि।[3]

---

1. कुत्बमुश्तरी पृ. ८८ सं. मौलवी अब्दुलहक़, कराची १९५३
2. दीवाने वजही सालारजंग लाइब्रेरी नं ५११ हैदराबाद
3. शीर्षकों के नाम 'मुल्ला वजही के इंशाइए' शीर्षक जावेद वशिष्ट के ग्रन्थ से उद्धृत किए गए हैं।

वजही के निबन्धों के भाव और भाषा की सही जानकारी प्राप्त करने के उद्देश्य से निम्नलिखित चुने हुए प्रसंग उद्धृत किए जा रहे हैं—

१. हिम्मत २. अक़्ल ।

उपर्युक्त शीर्षकों के अन्तर्गत निबन्ध के कतिपय अंश ही दिये जा सकते हैं।

१. हिम्मत

हिम्मत ती नीत होता हस्त, दुनिया में हिम्मत बड़ी बस्त ।...... हिम्मत ती नल्ला माँ हिम्मत, बाप हिम्मत तीं पड्या सू खड़ा होता । माँ हिम्मत बाप हिम्मत, पीर हिम्मत, मुर्शिद हिम्मत जकुच है सू 'हिम्मत हिम्मत'। जिस मर्द में कुच हिम्मत है उस मर्द पर रहमत, रहमत हज़ार रहमत । बैत—

वही मर्द जू हमेशा हिम्मत सूं हमदस्त है

हिम्मत खुदा के खजाने की खास कुछ बस्त है ।

x x x x

क्या काम आवे रस नैं सू गांडा, जिस में हिम्मत नैं सू खाली भांडा । बैत—

जे कुछ खूबी हैं सू हिम्मत के बाब हैं

हिम्मत नाऊँ लेना भी लई सवाब हैं।

२. अक़्ल

दीन व दुनिया का तमाम काम अक़्ल ते चलता, उसके हुकुम बाज जरा कदी नें हिलता । उसके शरमाए पर जिनो चले, हर दो जहान में हुवे भले । दुनिया में खूब कहवाये, चार लोकाँ में इज़्ज़त पाये । जहाँ रहै खड़े, कबूल पड़े । अपे भले तो आलम भला । अपे चल नहीं जानते दुसरियाँ पर बुरा मानते । अव्वल अपना खबर में अपे रहना, पिछे दुसरियाँ कूँ बुरा कहना । जिने अपस कूँ पिछाना उने सब जान्या । जिधर ढलना है, उधर अक़्ल के उजाले में चलना है । आदमी ने अक़्ल छोड्या । दीवाना हुवा अपना अपना सर अपे फोड्या ।

अगर तुज में कुच समझ है तो सीक। जकोई यू चलते चलता है, वत कामिल होता है, रोशन तबियत जिन्दा दिल होता है। अक्ल में का किलवत जूं रेशम में सूत, जूं दूद में छाच, जूं पाच में काच।

अक़्ल नूर है। अक्ल की शेर बहुत दूर है। अक़्ल है तो आदमी कहवाते, अक्ल है तो खुदा कूं पाते। अक्ल ती मीर, अक्ल ती पीर, अक्ल ती पादशाह, अक्ल ती वजीर, अक्ल ती दुनिया, अक्ल ती दौलत, अक्ल ती चलती सुलतानां की सलतनत। जिसमें भोत अक्ल वो भोत बडा। अक्ल सूं चलती खुदा की खुदाई। अक़्ल न होती तो कुछ न होता, कुछ रुच न होता। बैत—

अक़्ल नूर ते सब जग ने नूर पाया है

जिसे जू इल्म सीखा सू अक्ल ती आया है।

x x

अक्ल बगैर दिल कूं नूर नहीं, अक़्ल कूं खुदा कहना की कुच दूर नहीं। बैत—

जिसे है अक़्ल वो हर बात कूं सँभाल कहे

जू सौ बरस कू सोएगा सू वो उताल कहे।

जिस उद्यान में दिल को हुस्न (सौन्दर्य) से मिलने केलिए लाया गया है उसका वर्णन देखिए—

हैरान होकर देखने लाग्या। ज्यूं बाग में ती कलियाँ सब फूल कर फूल होकर र्त्यां रल्यां। ठारें ठार। चारों तरफ झलकते हैं झलकार। झाडां ने सब ताजा किए हैं। सिंगार गले में फूलाँ के भाए हैं हार। बन रुत आए है बार। जानवराँ डालिएँ पर मस्त मरगोलते हैं मस्त होकर सरशार।

हुस्न का रूप वर्णन देखिए जब वह उद्यान में दिल के साथ मुलाकात केलिए तैयार हो जाती है—

खुश गुफ़तार वो खुश रफ़तार दीदाँ का सिंगार। जीव का आधार। आलम का मदार। अजब हूर। खूबी का खूर। महबूबी का नूर। छंदभरी

वाल। लताफत के फूल की डाली। …फूल की पंकड्याँ जैसे हाताँ। करनाँ जैसे बाल। आफताब जैसा जमाल। तन फूल ती न रम तबियत आग ती गरम।

वजही ने 'सबरस' में अनेक पद्य उद्‌धृत किए हैं। फारसी, अरबी, ब्रज, दक्खिनी आदि अनेक भाषाओं के देते हुए लेखक ने अपने बहुभाषा ज्ञान का परिचय दिया है। कबीरदास के निम्नलिखित तीन दोहे 'सबरस' में प्रस्तुत किये गये है—

१. पोती थी खू खोटी भई पंडित भया न कोय
   एकी अछर पेम का फिरे सू पंडित होय।

२. जिन कूँ दरसन अत है तिन कूँ दरसन उत
   जिस कूँ दरसन उत नैं तिन कूँ अत न उत।

३. धरती म्याने रीच धर बीज बिखरकर बोय
   माली सींजे सौ घडा रित आएँ फल होय।
   (पाठ भेद पर ध्यान दीजिए)

'सबरस' में वजही ने अनेक काम की बातें दी हैं, जिनमें से कतिपय नीचे दी जाती हैं—

१ इस किताब का नावँ 'सबरस' सब को पढ़ने आवे हवस।

२ इंसान याने ग्यान, जिसमें कुछ ग्यान नैं वह हैवान।

३ अजन्ता विचारा भला, जानते पर पड़े बला।

४ अपनी इज्जत की नैं शरम सूँ दुसरियाँ का क्या रखेंगे नियम धरम।

५ एक झाड एक डाली, समज आकर दोय डाली।

६ अपना जीव खुश तो जमीन आसमान खुश, अपना जीव खुश तो सब जहान खुश।

७ बड़ाई मुफ्त में नैं आई, जितनी हिम्मत उतनी बडाई।

८ बहूत काना करना हवस, इज्जत में सूँ जितना मिल्या उतना च बस ।

९ बडी अक्ल में ह्लो मिले तो यूँ है खांजी जूँ शराब में ताडी जूं दूध में काजी ।

१० भला आदमी कुछ करता तो यू कुछ कूँ कुछ पाते कूतियाँ कूँ सलक दिए तो मूँ चाटते आते ।

११ बुरे सूँ भलाई करना, दुशमन सूँ सगाई करना, नादानगी सरासर है ।

१२ मरना मरना चुके ना ऐसा मरना जू कोई थूके ना ।

१३ जु कुछ होता खु़दा का भाता, बुरा वक़्त क्या पूछकर आता ।

१४ खुशी उजाला गम अंधारा । क्या करे यहाँ आदमी बिचारा ।

१५ दुनिया ज्यूँ दोपहर की छानूँ, इस दुनिया कूँ सर है न पाऊँ ।

१६ कहाँ गंगा तेली कहाँ राजा भोज ।

१७ काम गया हात ते पिछे क्या फायदा किस बात ते ।

१८ लडकर क्या पाया । अपना भरम गँवाया ।

१९ राम जू जात कर रावन पर आए । घर के भेदी ते लंका जाए ।

२० मूँ में ते बोह निकल्या पिछे सू क्या फिर कर आता है
तीर कमाँ ते छूट्या सू क्या संभाल्या जाता है ।

'सबरस' की भाषा

वजही ने 'सबरस' में अपनी भाषा को हिन्दी और जबान हिन्दुस्तान नाम से पुकारा है । ग्रन्थारम्भ में लेखक ने जो गर्वोक्ति कही है उसका एक अंश द्रष्टव्य है—

"कोई इस जहान में हिन्दुस्तान में हिन्दी जबान सूँ इस लताफत इस छंदाँ सूँ नज्म होर नस्र मिला कर गला कर यूँ नैं बोल्या ।"

आगे वजही अपनी भाषा को 'जबान हिन्दुस्तान' बताते हैं।

'सबरस' की भाषा की व्याकरणिक विशिष्टताओं की विवेचना करते हुए डॉ. सुहेल बुखारी ने सैंसठ (६७) तत्त्व प्रस्तुत किए हैं जो 'सबरस' की भाषा को उर्दू से अलग करते हैं। आप ने तीस (३०) तत्त्व गिने हैं जो 'सबरस' की भाषा का हरियाणवी से सम्बन्ध जोड़ते हैं।

डॉ. सुहेल बुखारी के शब्दों में "उर्दू और दकनी में जितना ज्यादा इख़तिलाफ़ है हरियानी और दकनी में उतनी ही मुशाबिहत मौजूद है।"

'सबरस' दक्खिनी के विकासकाल में रचित ग्रन्थ है। दक्खिनी में पंजाबी, गुजराती, मराठी आदि हिन्दीतर आर्य भाषाओं का प्रभाव पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है। हरियाणी, ब्रज आदि का प्रभाव भी दक्खिनी पर पड़े बिना नहीं रहा। हरियाणी खड़ीबोली के इलाके के नज़दीक की बोली है। दक्खिनी तो दिल्ली की खड़ीबोली से विकसित रूप ही है।

'सबरस' में प्रयुक्त कतिपय मुहावरे द्रष्टव्य हैं—

उतारा जाना	=	मारा जाना
उजाला पाड़ना	=	रोशनी करना
बात बोलना	=	बात करना
जीवँ मारना	=	जान से मारना
चित भरना	=	ध्यान देना
दंद सारना	=	दुशमनी करना

कतिपय रोजमर्रा के उदाहरण देखिए—

लटपट होना	=	रीझना, मिलना
मोड़ खाना	=	वापस करना
जिधर तिधर	=	जहाँ तहाँ
छिपे चोरी	=	चोरी छिपे
कधीं मधीं	=	कभी कभार

सबरस में प्रयुक्त कतिपय संस्कृतमूलक शब्द—

अपछरी (अप्सरा), अपरूप, उपकार, अधार (आधार), अधर, उर्बसी (उर्वशी), इस्तिरी (स्त्री), अंतर, अंग, बिचितर (विचित्र), बिद्दिया (विद्या), बधाई, भान, परान (प्राण), पुरुस (पुरुष), परगट, परमेस (परमेश्वर), पवन, तुरंग, जग जीवन, चितर (चित्र), दास, दिक, सत, सुजान, सरग (स्वर्ग), सुरंग, सुन्दर, संमुख, सुवाद (स्वाद), काल, गगन, ग्यानी (ज्ञानी), मास, मान, मदनमूरत, मन मोहन, नार, नारी, निरजोत, निस, नियम, नयन इत्यादि।

'सबरस' वजही की सृजनशक्ति का मणिमुकुट है। इस गद्य रत्न में निबन्धकला विलास करती नजर आती है। खड़ीबोली गद्य का सुगठित और सुव्यवस्थित स्वरूप भी 'सबरस' प्रस्तुत करता है।

'सबरस' की भाषा का सर्वांगीण अध्ययन किया जाना चाहिए। खड़ीबोली के विकास के अनेक पहलुओं को भली भाँति समझने केलिए 'सबरस' बड़ा काम देता है। हिन्दी के शब्द भण्डार को समृद्ध करनेवाले अनेक शब्दों के मूल उत्स तक जाने की सामग्री यह ग्रन्थ प्रदान करता है। असल में वजही की भाषा राष्ट्रभारती के राष्ट्रव्यापी स्वरूप को प्रदर्शित करती है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वजही अपनी साहित्यिक प्रतिभा से मोन्टैन और बैकन के समकक्ष स्थान पाने योग्य हैं। हिन्दी की अन्य किसी बोली में 'सबरस' का जैसा उत्कृष्ट गद्य-ग्रन्थ पाया नहीं जाता। इस दृष्टि से वे हिन्दी के प्रथम निबन्धकार भी माने जा सकते हैं। केवल लिपि को लेकर 'सबरस' के लेखक को उर्दूवालों ने अपने साहित्यिक इतिहास में स्थान दिया। वजही की रचनाओं को वे अपनी सम्पत्ति मानते हैं। लिपि की अज्ञानता के कारण हिन्दीवालों ने इस अनुपम ग्रन्थ-रत्न की उपेक्षा की। हिन्दी गद्य साहित्य का इतिहास तभी पूर्ण और सही बनेगा जब 'सबरस' और अन्य दक्खिनी के गद्य ग्रन्थों को उसके अन्तर्गत स्थान दिया जाएग।

अमीन और वजही के पश्चात् दक्खिनी में गद्य लेखकों का ताँता-सा लगा। अब्दुस्समद, मीराँ याकूब, आबिदशाह हसन उल हुसैनी, शाह बुरहानुद्दीन कादरी, मुहम्मद शरीफ आदि अनेक गद्यकार गद्यविधा को समृद्ध करते दिखाई देते हैं। इतिहास-ग्रन्थ और तज़्किरे भी दक्खिनी हिन्दी में प्रस्तुत हुए। इन गद्यग्रन्थों के विस्तृत एवं विशद विवेचन से हिन्दी-गद्य साहित्य की समृद्धि ही नहीं, बल्कि हिन्दी भाषा के आदिकालीन रूप भी स्पष्ट होंगे। □

५. केरल की पुरानी हिन्दी

केरल छोटा होने पर भी अनेक रियासतों में बँटा हुआ था। यहाँ सुदूर उत्तर के लोगों का ही नहीं बल्कि विदेशियों का भी आवागमन होता था। केरल का प्रकृति सौन्दर्य लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता था। इसके अतिरिक्त चाय, इलायची, काली मिर्च, हाथी-दाँत आदि वस्तुओं के व्यापार केलिए भारत वर्ष के नाना भागों से ही क्या विदेशों से भी बहुत-से व्यापारी आया-जाया करते थे। इस प्रकार अनादिकाल से ही केरल संसार के आकर्षण का केन्द्र रहता आया है। भारत वर्ष के धर्मनिष्ठ लोगों केलिए आदि शंकर जैसी विभूति को जन्म देने के कारण केरल तीर्थस्थल भी रहा है। उस अतीत युग में जो हिन्दी भाषी यहाँ आते थे वे 'गोसाई' नाम से जाने जाते थे और हिन्दी को 'गोसाई भाषा' नाम से अभिहित किया जाता था। किन्तु, दक्खिन में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो गया और दक्खिनवासी केरल की ओर बढ़ आए तब केरलीयों का हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। जो हिन्दी कर्णाटक और तमिलनाडु के कई इलाकों में व्यवहृत होती थी वह केरल में भी गैर मलयाली लोगों को मलयाली लोगों के साथ सम्पर्क जोड़ने का माध्यम हो गई। हिन्दी तो ईसा की तेरहवीं शती से ही गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्णाटक के कई भागों में व्यवहृत की जाती रही और पन्द्रहवीं शती के प्रथम चरण से ही दक्षिण में वह साहित्य की वाहिका भी बन चुकी थी।

केरल में हिन्दी का प्रवेश कब हुआ इस की सही तिथि जानने का कोई प्रमाण नहीं है। जैसे दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार के साथ धर्मप्रचारकों, सूफ़ी-संतों और दरवेशों का नाम जुड़ा हुआ है वैसे केरल में हिन्दी को

अमीन और वजही के पश्चात् दक्खिनी में गद्य लेखकों का ताँता-सा लगा। अब्दुस्समद, मीराँ याकूब, आबिदशाह हसन उल हुसैनी, शाह बुरहानुद्दीन कादरी, मुहम्मद शरीफ आदि अनेक गद्यकार गद्यविधा को समृद्ध करते दिखाई देते हैं। इतिहास-ग्रन्थ और तज़्क़िरे भी दक्खिनी हिन्दी में प्रस्तुत हुए। इन गद्यग्रन्थों के विस्तृत एवं विशद विवेचन से हिन्दी-गद्य साहित्य की समृद्धि ही नहीं, बल्कि हिन्दी भाषा के आदिकालीन रूप भी स्पष्ट होंगे। □

५. केरल की पुरानी हिन्दी

केरल छोटा होने पर भी अनेक रियासतों में बँटा हुआ था। यहाँ सुदूर उत्तर के लोगों का ही नहीं बल्कि विदेशियों का भी आवागमन होता था। केरल का प्रकृति सौन्दर्य लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करता था। इसके अतिरिक्त चाय, इलायची, काली मिर्च, हाथी-दाँत आदि वस्तुओं के व्यापार केलिए भारत वर्ष के नाना भागों से ही क्या विदेशों से भी बहुत-से व्यापारी आया-जाया करते थे। इस प्रकार अनादिकाल से ही केरल संसार के आकर्षण का केन्द्र रहता आया है। भारत वर्ष के धर्मनिष्ठ लोगों केलिए आदि शंकर जैसी विभूति को जन्म देने के कारण केरल तीर्थस्थल भी रहा है। उस अतीत युग में जो हिन्दी भाषी यहाँ आते थे वे 'गोसाई' नाम से जाने जाते थे और हिन्दी को 'गोसाई भाषा' नाम से अभिहित किया जाता था। किन्तु, दक्खिन में हिन्दी का प्रचार-प्रसार हो गया और दक्खिनवासी केरल की ओर बढ़ आए तब केरलीयों का हिन्दी से घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। जो हिन्दी कर्णाटक और तमिलनाडु के कई इलाकों में व्यवहृत होती थी वह केरल में भी गैर मलयाली लोगों को मलयाली लोगों के साथ सम्पर्क जोड़ने का माध्यम हो गई। हिन्दी तो ईसा की तेरहवीं शती से ही गुजरात, महाराष्ट्र, आन्ध्र और कर्णाटक के कई भागों में व्यवहृत की जाती रही और पन्द्रहवीं शती के प्रथम चरण से ही दक्षिण में वह साहित्य की वाहिका भी बन चुकी थी।

केरल में हिन्दी का प्रवेश कब हुआ इस की सही तिथि जानने का कोई प्रमाण नहीं है। जैसे दक्षिण भारत में हिन्दी के प्रचार के साथ धर्मप्रचारकों, सूफ़ी-संतों और दरवेशों का नाम जुड़ा हुआ है वैसे केरल में हिन्दी को

प्रचलित करनेवालों में भी सूफी-संतों का नाम लिया जा सकता है। यद्यपि केरल में इस्लाम के आविर्भाव का इतिहास उतना पुराना है जितना स्वयं इस्लाम ही तथापि पन्द्रहवीं शताब्दी में केरल में भी इस्लाम के प्रचारक सूफी संत ही रहे। सन् १४८० ई. में वरिष्ठ सूफी आचार्य सय्यद अहमद जलालुद्दीन बुखारी फारस से मलाबार के 'वलरपट्टणम' नामक शहर में आ बसे। सन् १६८० ई. में एक मुगल सरदार ने दक्षिण त्रावणकूर पर आक्रमण किया जिससे केरल के दक्षिणी इलाकों में इस्लाम फैल गया।[1] दक्षिण त्रावणकूर में कर्णाटक और उसके आस पास के इलाक़ों से आए मुसलमान या तो सैनिक थे या सामान्य नागरिक थे। उनमें व्यापारी वर्ग भी थे और वे राज्य के विविध भागों में बस गए।[2]

केरल के मुसलमानों में दकनी, लब्बा, कच्चिमेन, नैनार, रावुत्तर आदियों की संख्या भी कम नहीं है। दकनी समुदाय के जनों के सय्यद, शैख, मुगल और पठान चार प्रभेद हैं। इनकी मातृभाषा दक्खिनी है। वे कर्णाटक, बीजापुर और दकन से आए हुए हैं। 'कच्चिम्मेन' नाम से अभिहित गुजराती मुसलमानों की बस्ती भी कहीं-कहीं पायी जाती है। त्रिवेन्द्रम, आलप्पी, कोचिन, कालिकट, कण्णूर आदि नगरों में दक्खिनी मुसलमानों की बस्तियाँ पायी जाती हैं। इन दक्खिनी मुसलमानों की हिन्दी मलयालम से बहुत प्रभावित है।

केरल में प्रचलित दक्खिनी पर मलयालम का गहरा प्रभाव पड़ा है जिसका ज्ञान हमें उन ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थों से प्राप्त होता है जो मलयालम की पुरानी लिपि में लिपिबद्ध हुए। आधुनिक काल में दक्खिनी के व्यवहार का क्षेत्र बहुत ही सीमित रह गया है। केरल में अब दक्खिनी घर के चार दीवारों के अंदर ही रह गई है और दक्खिनी भाषियों केलिए बीते हुए वैभव के दिन अब सपने मात्र रह गए हैं।

यह उल्लेखनीय बात है कि केरल में अधिकांश दक्खिनी लोग व्यापार केलिए आए थे और केरलीयों केलिए भी उनके साथ व्यापार करने केलिए

1. Trivandrum District Gazetteer P. 174-75
२. केरल चरित्रम् भाग २. पृ. ५२०
केरल हिस्टरी एसोसियेशन, एरणाकुलम

उनकी भाषा की जानकारी प्राप्त करना अनिवार्य हो गया। मलयालम भाषी को दक्खिनी का व्यावहारिक ज्ञान देने के उद्देश्य से मलयालम लिपि में दक्खिनी ग्रन्थ लिखे गए। व्यापार, व्यवहार, लेन-देन आदि सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति केलिए निर्मित ये ग्रन्थ अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहे हैं और इसमें मतभेद नहीं हो सकते कि इन ग्रन्थों के अध्ययन से कोई भी मलयाली हिन्दी में अपना आशय बडी आसानी से अभिव्यक्त कर पाएगा।

उत्तरी मलाबार में दक्खिनी को मदरसे में स्थान दिया गया। मजहवी बातों को सिखाने केलिए जहां अरबी-मलयालम लिपि में मलयालम पढ़ाई जाती थी वहाँ अरबी-फारसी लिपि में हिन्दी को सीखने-सिखाने में विशेष कठिनाई नहीं होती थी। आज भी केरल भर के मुसलमान अपने मदरसों में मलयालम के माध्यम से अपने बच्चों को धार्मिक बातों की शिक्षा देते हैं और अरबी-मलयालम लिपि का इस्तेमाल करते हैं।

इस प्रसंग में एक बात का स्मरण करना आवश्यक है। उन दिनों हिन्दी का प्रचार हिन्दुस्तानी 'नाम से होता था। अंग्रेजों के शासनकाल में विशेषकर फोर्टविलियम कॉलेज की स्थापना के बाद हिन्दी केलिए 'हिन्दुस्तानी' नाम बहुत ही ज़ोर से चल पड़ा था। खासकर ग़ैर हिन्दी क्षेत्रों में यह नाम लोकप्रिय हो गया। इसलिए यह नाम केरल में प्रचलित हिन्दी के लिए भी प्रयुक्त हुआ। यह भी ध्यान देने योग्य है कि महाराजा स्वाति तिरुनाल (सन् १८१३-१८४७ई.) के हिन्दी गीत की भाषा में दक्खिनी का गहरा असर देखा जा सकता है। हिन्दुस्तानी नाम से यहाँ जो हिन्दी व्यवहार में आई और ग्रन्थ रचना के द्वारा प्रतिष्ठित हुई और प्रचलित हुई वह हिन्दी की दक्खिनी बोली थी। इसका सबूत हमें उन ग्रन्थों से मिलता है जो मलयालम की पुरानी लिपि में लिपिबद्ध हुए हैं। ऐसे तीन ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थ केरल विश्वलवद्यालय के कार्यवट्टम परिसर में स्थित प्राच्थ विद्यामंदिर एवं अनुसंधान संस्थान में उपलब्ध हैं। उन ग्रन्थों में प्रयुक्त भाषा के आधार पर हम यह समझने का प्रयास करेंगे कि उस समय की हिन्दी का क्या स्वरूप था। प्रस्तुत ग्रन्थों के उपलब्ध होने से यह बात बडे निश्चय के साथ कह सकते हैं कि भारतीय भाषाओं में केवल हिन्दी को ही यह सौभाग्य मिला कि वह सम्पूर्ण देश में फैलकर सम्पर्क भाषा का महान काम निभाती रही। अब हम केरल में प्रचलित तथाकथित 'हिन्दुस्तानी' का स्वरूप समझ लेंगे।

६०७९ संख्यावला ग्रन्थ

केरल विश्वविद्यालय के कार्यवट्टम कैम्पस में स्थित प्राच्य विद्या मंदिर एंव हस्तलिखित ग्रन्थालयम में जो तीन ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें ६०७९ संख्यावाली पोथी का विशेष महत्त्व है। मलयालम की पुरानी लिपि में लिखित यह पोथी इस बात को जाहिर करती है कि हिन्दी के पठन-पाठन में केरल के लोग दिलचस्प रहते आए हैं। मलयालम लिपियों में लिखित हिन्दी शब्द इस सच्चाई की घोषणा करते हैं कि यह पोथी मलयालम भाषियों को हिन्दी सिखाने के इरादे से लिखी गई है। संस्कृत भाषा का शिक्षण भी मलयालम लिपियों में देनेवाले केरल के भाषा प्रेमी द्वारा हिन्दी केलिए भी अपनी लिपि का प्रयोग करना सर्वथा उचित और स्वाभाविक ही था।

इस ग्रन्थ के लेखन और रचनाकाल आदि की जानकारी पाने केलिए कोई प्रमाण उपलब्ध नहीं है। ग्रन्थ में प्रयुक्त दोनों भाषाओं के शब्दों को देखकर हम यह अनुमान लगा सकते है कि यह पोथी कम से कम दो सौ वर्ष पुरानी है। हिन्दी भाषा शिक्षण सम्बन्धी प्रस्तुत ग्रन्थ से यह बात विदित होती है कि उस अतीत युग में भी हिन्दी आसेतु हिमाचल फैल कर सब को एकता के सूत्र में बाँधने का काम कर रही थी। उन दिनों राष्ट्रीय एकता भले ही न रही हो हिन्दी के द्वारा जनता को परस्पर सम्पर्क में आने का अवसर मिलता था।

अब हम ६०७९ संख्यावाली पाण्डुलिपि का परिचय पायेंगे। इस ग्रन्थ में एक ही लिपिकार के हस्ताक्षर हैं। सभी ताड़पत्र एक ही समय के हैं। इसमें कुल १५० पत्र संलग्न हैं, बाकी या तो नष्ट हुए हैं या नहीं लिखे गए हैं। प्रत्येक पृष्ठ में सात या नौ संतरें दो कतारों में लिखी गई हैं। सभी पत्रों के दोनों पृष्ठों पर लिखे गए हैं।

ग्रन्थ के शीर्षक के रूप में "हिन्दी पाठमाला With Malayalam Translation नाम दिया है, जो संग्रह कर्त्ता का दिया हुआ मालूम पड़ता है। ग्रन्थ का काल निर्णय भी प्रामाणिकता के साथ नहीं किया जा सकता। किन्तु ग्रन्थ में प्रयुक्त मलयालम भाषा का स्वरूप और लिपि की सूरत के आधार पर काल लिर्णय कर सकते हैं। इसका रचनाकाल दो शतियाँ पूर्व ही हो सकता है।

ग्रन्थारम्भ में मलयालम में जो बातें लिखी हुई हैं उसका आशय इसप्रकार है—

अविघ्नमस्तु। इस ग्रन्थ में हिन्दुस्तानी भाषा समझने केलिए मलर्थां (मलयालम केलिए पुराना प्रयोग) भाषा में अर्थ दिया गया है। लेखक का कहना है कि इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त किया गया है। प्रथम भाग में शब्द, एकवचन, बहुवचन, विभक्तियुक्त रूपों (कारकों) के उदाहरण, क्रियाएँ और क्रियाओं के भी लिंग, वचन आदि बताए गए हैं। उत्तरार्द्ध में शब्दों को ७४ वर्गों में विभाजित करके, समझाने का प्रयास किया गया है। प्रथम वर्ग में 'अव्यय' शीर्षक के आधार पर हिन्दी में प्रयुक्त अव्यय दिए गए हैं। एक शब्द भी ऐसा नहीं है जिसका अर्थ न बताया हो। ग्रन्थ के अंतिम पृष्ठों के अनुपलब्ध होने से वाक्य संरचना के उदाहरण नहीं मिलते।

प्रस्तुत ग्रन्थ की सामान्य विशेषताएँ—

जैसा कि लेखक ने बताया है इस ग्रन्थ को दो भागों में विभक्त किया जा सकता है। बारीकी से देखा जाय तो पता चलेगा कि इसके और भी भेद प्रभेद किए जा सकते है। यद्यपि ग्रन्थकर्त्ता ने इस ग्रन्थ की भाषा को हिन्दुस्तानी शब्द से पुकारा है तथापि भाषा के स्वरूप को देखकर इसे दक्खिनी का केरलीय रूप माना जा सकता है। दक्खिनी की पहिचान के जो चिह्न बताये जाते हैं, वे सब इस ग्रन्थ की भाषा में परिलक्षित होते हैं। यथा—

१) दक्खिनी हिन्दी में प्रचलित सभी क्रिया धातुएँ इस ग्रन्थ में प्राप्त होती हैं।

२) विरोध दर्शाने केलिए 'नहीं' के साथ मराठी और गुजराती से प्राप्त 'नक्को' शब्द का प्रयोग दक्खिनी हिन्दी में किया जाता है। यह शब्द इस ग्रन्थ में आया है। यह दिक्खनी हिन्दी की पहिचान का चिह्न है।

३) हिन्दी के अवधारणा बोधक शब्द 'ही' के अर्थ में मराठी का 'च' शब्द दक्खिनी हिन्दी में प्रयुक्त किया जाता है, जो इस ग्रन्थ में दिया गया है।

४) गुजराती में प्रयुक्त क्रिया का सहायक रूप 'अछ' दक्खिनी में इस्तेमाल किया जाता है, जो इस ताड़पत्र में आया है ।

५) 'ने' प्रत्यय का अभाव भी दक्खिनी के प्रारंभिक स्वरूप की याद दिलाता है ।

६) तत्सम और तद्भव शब्दों को जिन परिवर्त्तनों के साथ दक्खिनी ने स्वीकार किया है, वे सब परिवर्त्तन इस ग्रन्थ में प्रयुक्त शब्दों में भी पाये जाते हैं ।

७) अरबी-फारसी शब्दों के प्रयोग में भी द्रक्खिनी द्वारा स्वीकृत सारी विशिष्टताएँ इसमें भी मौजूद हैं ।

८) वाला, वाले, वाली के साथ उसी अर्थ में हारा, हारे, हारी आदि का इस्तेमाल किया जाता है ।

९) कई शब्दों के बहुवचन 'आँ' प्रत्यय लगाकर बनाये जाते हैं ।

जैसा कि ग्रन्थकार ने लिखा है कि प्रारम्भ में व्याकरण का व्यावहारिक पक्ष समझाने का प्रयास किया गया है । सर्वप्रथम ९ सर्वनाम विभक्तियों के साथ दिए गए हैं । व्याकरण का कोई सिद्धान्त निरूपित नहीं किया गया है। कारकों के प्रतिपादन के प्रसंग में अधिकरण कारक का प्रत्यय 'पर' या उसके अन्य रूप का प्रदिपादन नहीं हुआ है। 'ने' प्रत्यय के प्रयोग को समझने का कोई उदाहरण नहीं मिलता ।

वार्तालाप में काम आनेवाले कतिपय संज्ञा शब्द दिये गए हैं । इसके बाद आना, जाना, लेना, देना आदि क्रियाएँ काल प्रत्यय के साथ समझाये गए हैं। प्रत्येक क्रिया के काल रूपों के ४५-४७ विभिन्न काल रूप प्रस्तुत करके लेखक ने उसका सही मलयालम रूप दिया है। इसीतरह 'न', 'मत' आदि विरोध दर्शक शब्द भी स्पष्ट किए गए हैं।

दक्षिण भारत में प्रचलित दक्खिनी के अध्ययन से इस बात को हमें मानना पड़ता है कि हिन्दी समद्ध और सम्पन्न भाषा ही है । क्रिया धातुओं में

कतिपय ऐसी धातुएँ भी मिलती हैं जो केरल की दक्खिनी में ही प्रयुक्त होती हैं। कतिपय ऐसे संज्ञा शब्द भी मिलते हैं जो मलयालम से लिए गए हैं। शब्द भी हिन्दी की ध्वनिगत विशिष्टताओं के अनुरूप परिवर्त्तित करके ही प्रयुक्त किए गए हैं। उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

पेना = कलम, गडू (गडु) = किश्त
कल्यान (कल्याणम् = विवाह) पित्तला (पित्तला = पीतल)
अत्तर (= इत्र) कुप्पी (कुप्पि = शीशा) पूड (पोटि) = धूल

मलयालम का ध्वनिगत प्रभाव निम्नलिखित शब्दों में पाये जाते हैं -

जेय (जय), मै (मैं), तुम्मारा (तुम्हारा) दूला (दूल्हा), ज्यान देना (जान देना), पोलाद (फौलाद), अपसोस (अफसोस), जप्त करना (जब्त करना), एनाम (इनाम), हेमेशा (हमेशा), माणिक (मानिक), गेहरा (गहरा) काणा (काना), उपर्युक्त धातुएँ या तो ग्राम्य होने से या प्रचार लुप्त होने से अब व्यवहार से उठ गई होंगी। मलयालम के प्रभाव को सूचित करनेवाले शब्द भी पाए जाते हैं। इनमें ऐसे संस्कृत तत्सम रूप हैं जो समान रूपी होने पर भी हिन्दी और मलयालम में भिन्नार्थों में प्रयुक्त किए जाते हैं। इस प्रसंग में यह बात उल्लेखनीय है कि तेलुगु, कन्नड़ आदि द्रविड़ भाषाओं से गृहीत शब्द भी दक्खिनी में व्यवहृत होते हैं।

मलयालम में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्द हिन्दी से होकर मलयालम में आए हैं, ऐसा विश्वास किया जा सकता है। यह बात बिलकुल सच है कि केरल के साथ अरब के व्यापारियों का सीधा ताल्लुक रहा था और आरम्भकालीन धर्मप्रचारक हज़रत जैनुल आबिदीन के नेतृत्व में केरल के समुद्री तट पर रहे। केरल के कोडुङ्ङल्लूर (क्रांगनूर) में स्थित मस्जिद भारत की सबसे पुरानी मस्जिद बताई जाती है। यह विश्वास भी किया जाता है कि इस मस्जिद की नींव में चेरमान पेरुमाल द्वारा लाया गया पत्थर रखा गया है। यह सब इस बात की सत्यता प्रमाणित करते हैं कि केरल में मुसलमानों का आगमन इस्लाम के आविर्भावकाल में ही हुआ।

जो शब्द हिन्दी से होकर मलयालम में आए हैं वे इस प्रकार हैं—

मामूल, बेजार, बडाई, जोर, जप्त, इनाम, तकरार, सुमार, पट्टालम (पटाल), चाप्रा (छपरा), तक्याव (तकिया) कचडा (कचरा)

इसलिए यह स्वाभाविक ही था कि अरबी भाषा के अनेक अल्फ़ाज़ मलयालम में घुल मिल गए। फिर भी इतिहास से इस बात के सबूत मिलते हैं कि 'राजभाषा' एवं 'अदालत की भाषा' में प्रयुक्त अरबी-फारसी शब्द सीधे उन भाषाओं से न ग्रहण कर हिन्दी के माध्यम से स्वीकार किए गए हैं। मलयालम में चिर प्रतिष्ठित कुछ अरबी-फारसी शब्द निम्नलिखित हैं—

मलयालम रूप	हिन्दी रूप
कच्चेरि	कचहरी
हर्जि	अर्जी
मसाल	मसाला
त्रास	तराजू
तोप्पि	टोपी
उरुमाल	रूमाल
दुप्पट्टाव्	दुप्पट्टा
लंगोटि	लंगोटी

मलयालम में व्यवहृत हिन्दी शब्द नात्तून (भाई की पत्नी) नातिन से चाप्रा छप्पर से, चेम्मान चमार से, पट्टालम पटाल से आए हैं।

इन शब्दों को तद्भव समझा जा सकता है।

मलयालम में स्वीकृत उपर्युक्त शब्द इस भाषा के उधार लेने की प्रवृत्ति के साथ-साथ मूल स्रोत का पता भी देते हैं। लेन-देन की नीति से भाषा का विकास होता है। यह ग्रन्थ उपर्युक्त कथन की पुष्टि करता है।

मलयालम में जो शब्द आजकल प्रयुक्त नहीं होते वे भी इसमें आए हैं। ऐसे शब्दों से प्रस्तुत ग्रन्थ के काल निर्णय में सहायता मिलती है। निम्नलिखित शब्द आधुनिक मलयालम में पाये नहीं जाते—

कड्दास, काइतम् ये दोनों शब्द क्रमशः कागज़ और क़ायदा से बने हैं। अब कागज़ केलिए मलयालम में 'कडलास्' शब्द ही चलता है। यह सही है कि कागज़ और 'कडलास्' का

मूल रूप अरबी का 'किरतास' है। मलयालम के पुराने रूपों में 'कायसम्' भी मिलता है। नृत्तिक्कुका, नृत्तिप्पिक्कुका ये दोनों शब्द जो इस ताड़पत्र में व्यवहृत हुए हैं अब प्रयुक्त नहीं होते। इन दोनों शब्दों में सहायक क्रिया का अभाव हिन्दी का प्रभाव सूचित करता है।

सहायक के अर्थ में इस ग्रन्थ में प्रयुक्त 'कुम्मक' शब्द का विकृत रूप 'कुम्मा' शब्द आज भी मलाबार प्रदेश की माँप्पिला बोली में व्यवहृत होता है।

पुडुक्कन, पुडुक्कच्चि (दास, दासी) शब्द भी मलयालम के किसी कोश में नहीं मिलते। ये ग्राम्य रूप हैं। अब इनका भी प्रयोग नहीं है। इन शब्दों के दक्खिनी रूप हैं बाँदा और बाँदी। इनमें बोली में कहीं-कहीं गाली के रूप में 'बहुंदा' शब्द सुनाई पड़ता है।

'असहमत' के अर्थ में 'असम्मतिक्कुका' शब्द का प्रयोग आजकल मलयालम में नहीं किया जाता। उसके बदले 'विसम्मतिक्कुका' शब्द ही प्रचलित है।

'ले देना' के अर्थ में इस ग्रन्थ में प्रयुक्त 'वेण्डिक्कुका' अब लुप्तप्राय हो गया है। अन्य शब्द—

प्रचार लुप्त रूप	प्रचलित रूप	हिन्दी में अर्थ
योचना	आलोचना	सोचना
पाछा	पादुशा, पाशा	बादशाह
चेरुक्कि, कुषन्ता		छोकरी
मेति अरि		ताजा चावल
प्लाक्का	चक्का	कटहल

धातुओं के वर्णन के बाद लगभग दो सौ संयुक्त क्रियाएँ दी गई हैं। इनमें अरबी-फारसी धातुओं के साथ करना, देना, पड़ना आदि सहायक क्रियाएँ लगाकर कुछ क्रियाएँ प्रस्तुत की गई हैं। तदनन्तर विशेषण, संज्ञा,

अव्यय आदि शब्द विभाग बनने के बाद लगभग एक सौ शब्दों का पर्याय भी दिया गया है। तत्पश्चात् 'मैं' और 'हम' लगाकर एक सौ वाक्यांश दिये गए हैं। लगता है कि वाक्य के प्रयोग सिखाने की दृष्टि से ये उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं।

अब ग्रन्थ के उतरार्द्ध पर विचार करेंगे। उत्तरार्द्ध में 'अमर कोश' की भाँति शब्दों को चौहत्तर वर्गों में विभाजित किया गया है। 'अव्यय' शीर्षक से शुरू होनेवाला यह भाग हर, दर, बे आदि उपसर्गयुक्त रूप के अनेक उदाहरण देते हुए विस्तार लेता है। 'कालवर्ग' के अन्तर्गत कई शब्द प्रस्तुत किए गए हैं। हिजरी सन् का मलयालम सन् में रूपान्तर, दिनों के नाम, संख्या सूचक शब्द, आतिशबाजियों के नाम, युद्ध में प्रयुक्त हथियारों के नाम, विभिन्न प्रकार के तिलक, तेल, धान, साग-सब्जियाँ, मसाला, पशु-पक्षी, राजा और राज परिवार से सम्बधित अनेक शब्द प्रस्तुत करते हुए ग्रन्थकार हमारे शब्द भण्डार की सीमा बढ़ा देता है। दुर्भाग्यवश तालिका में प्रस्तुत सभी वर्गों का विवरण इस ग्रन्थ में नहीं है। यदि पूरा ग्रन्थ प्राप्त होता तो शब्दकोश का कलेवर और बढ़ जाता।

इस ग्रन्थ की विशिष्टताएँ अनेक हैं। भाषा शिक्षक के नाम से यह पोथी अभिहित की जा सकती थी यदि इसमें पूर्ण वाक्यों का वर्णन किया जाता। जैसा कि ऊपर बताया गया है, इसमें वाक्यांशों को प्रस्तुत कर व्याकरण सम्मत शुद्धभाषा सिखाने का प्रयास किया गया है। भाषा के व्यावहारिक स्वरूप का परिचय ही दिया गया है। व्याकरण के सैद्धान्तिक निरूपण के अभाव में इसे व्याकरण ग्रन्थ नहीं माना जा सकता। व्यावहारिक व्याकरण ग्रन्थ का नाम भी इसके लिए उपयुक्त नहीं जँचता। क्योंकि इसके उत्तरार्द्ध में निघंटु की भाँति शब्दों के अर्थ दिए गए हैं। यह सत्य है कि पूर्वार्द्ध में भी हर शब्द का मलयालम अर्थ दिया गया है। किन्तु, कोश का स्वरूप नहीं है। पदबन्धों और शैलियों को देखकर हम इस ग्रन्थ को एक मुहावरा कोश या शैलीकोश मानने को विवश हो जाते हैं। इस प्रकार भाषा सीखने के चतुर्दिक उपायों से समन्वित यह अपूर्व ग्रन्थ अपने में अनोखा है। ऐसा दूसरा ग्रन्थ मलयालम में नहीं मिलता।

प्रस्तुत ग्रन्थ के अध्ययन की आवश्यकता

अब हम इस प्रश्न पर विचार करेंगे कि इस ग्रन्थ के अध्ययन से क्या प्रयोजन है?

१) यह ग्रन्थ मलयालम भाषियों को हिन्दी शिक्षण देने केलिए एक मलयाली द्वारा किया गया प्रथम प्रयास माना जा सकता है। भाषा शिक्षण खासकर अन्य भाषा शिक्षण के तरीके इस ग्रन्थ से समझे जा सकते हैं। व्याकरण के सिद्धान्तों का प्रतिपादन न करके व्यावहारिक रूप दिए गए हैं। यह पद्धति आधुनिक काल के भाषा शिक्षण की पद्धति से मेल खाती है। अतएव इस ग्रन्थ का ऐतिहासिक महत्त्व है।

२) हिन्दी की दक्खिनी बोली की सीमा तमिलनाडु से आगे निकलकर केरल तक बढ़ आती है। इस का प्रत्यक्ष प्रमाण है मलयालम की पुरानी लिपियों में लिखित ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थ। हिन्दी भाषा के विकास के इतिहास की यह भी एक कड़ी है।

३) जिन अरबी-फारसी शब्दों को मलयालम ने स्वीकार किया है, वे हिन्दी से होकर स्वीकार किए गए हैं, इस विचार को सत्य सिद्ध करनेवाले अनेक शब्द परिवर्त्तन की अस्थिर अवस्था को प्रदर्शित करते हुए हमारे सामने प्रत्यक्ष होते हैं। मलयालम में आए अनेक शब्दों के मूल उत्स तक पहुँचने में यह ग्रन्थ हमें सहायता पहुँचाता है।

४) तेलुगु, कन्नड़, तमिल आदि द्रविड़ भाषाओं के प्रभाव के उदाहरण दक्खिनी का साहित्य प्रदान करता है। यह ग्रन्थ हिन्दी की इस बोली पर हुए मलयालम का प्रभाव चाहे अल्पमात्र में ही क्यों न हो प्रकट करता है।

५) नव-नव शब्द जो इस ग्रन्थ में प्रवेश पा सके हैं वे हिन्दी के ओज, शक्ति तथा प्राणवत्ता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

६) विदेशी भाषाओं के शब्दों को अपने वातावरण के अनुरूप ढालने के उत्तम नमूने इस ग्रन्थ में मौजूद हैं।

७) दक्खिन में हिन्दी का प्रचार अरबी-फारसी (नस्तालीक़) लिपियों में हुआ है। तमिलनाडु के तांजूर (तंजावूर) जिले में ग्रन्थाक्षर में लिखित हिन्दी ग्रन्थ मौजूद हैं। केरल में इस भाषा को मलयालम लिपियों में प्रचलित करने का प्रयास किया गया। संस्कृत भाषा केलिए भी मलयालम लिपि का प्रयोग करनेवाले मलयाली द्वारा हिन्दी केलिए इस लिपि का प्रयोग अनुचित नहीं माना जा सकता। परिचित लिपि में अन्य भाषा सीखने का श्रम अधिक सफल हो सकता है, इसमें किसी को मतभेद नहीं होगा।

८) मलयालम के अनेक शब्दों का प्रयोग करके ग्रन्थकार ने पुराने ग्राम्य तथा प्रादेशिक भेद का परिचय दिया है। ये शब्द निश्चय ही मलयालम के लेक्सिक्कण निर्माताओं को आकृष्ट करेंगे, इसमें कोई शक नहीं।

९) प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त अनेक शब्द हिन्दी के देशव्यापी स्वरूप को समझने में सहायक हैं। राष्ट्रभारती के राष्ट्रव्यापी स्वरूप को फिर से अपनाने एंव लोकप्रिय बनाने केलिए इन शब्दों की जानकारी परम आवश्यक है। पारिभाषिक शब्दावली में कृत्रिम शब्दों को गढ़ित करके चलानेवालों को चाहिए कि वे हिन्दी के लोकप्रचलित तथा लोकप्रिय स्वरूप का अवलोकन करें। हिन्दी को सँवारते समय उसे अकृत्रिम सौन्दर्य प्रदान करे। देशी शब्दों की उपेक्षा करके भाषा को क्लिष्ट बनाने का अवांछित कार्य न करें। राज भाषा और राष्ट्रभाषा दोनों का स्वाभाविक विकास तथा प्रचार उसके प्रादेशिक भेदों से गृहीत शब्दों से हो सकेगा।

१०) लिपि-विन्यास

आर्य भाषा हिन्दी की कई ध्वनियों को मलयालम लिपियों में संकेतित नहीं किया जा सकता। फिर भी ग्रन्थकार ने उच्चारण को ध्यान में रखकर शब्दों को लिपिबद्ध किया है।

ग्रन्थकर्त्ता अज्ञात होने पर भी उनके सम्बन्ध में दो शब्द न कहना अनुचित होगा। मलयालम तथा हिन्दी दोनों भाषाओं पर उनका असाधारण अधिकार है। अर्थों के सूक्षम भेद पर उनका

ध्यान गया है । उच्चारण निष्ठा के साथ शब्दों को लिपिवद्ध कर लेखक ने हिन्दी के सहज स्वभाव से अपना सम्बन्ध तथा परिचय प्रकट किया है। यह इस धारणा का सबूत है कि ग्रन्थकार हिन्दी क्षेत्र में रह चुका है। मलयालम के कतिपय शब्द उस भाषा के लिपिवद्ध स्वरूप की अवस्था को प्रकट करते हैं। अब व्यवहार में न पाने वाले अनेक शब्दों को प्रस्तुत कर मलयालम के प्रादेशिक भेद पर प्रकाश डालते हुए उसकी बोली के अज्ञात पहलुओं को अभिव्यक्ति दी गई है। ग्रन्थकार ने वार्त्तालाप का अभ्यास कराना इस ग्रन्थ का लक्ष्य बताया है। इस दृष्टि से उनका प्रयत्न सफल हुआ है, ऐसा कह सकते हैं।

इस ग्रन्थ का यदि गहराई से अध्ययन किया जाय तो अनेक अज्ञात पहलुओं पर प्रकाश पड़ेगा। जब यह ग्रन्थ नागरी लिपि में लिप्यन्तरित किया जाएगा तब हिन्दी की बोलियों की समृद्धि और सम्पन्नता का परिचय पाया जा सकेगा।[1] उपलब्ध नवीन तथ्यों के आधार पर हिन्दी की विकास परम्परा का पुनरीक्षण करें तो हिन्दी भाषा का इतिहास नवीन रूप धारण करेगा। □

---

1. परिशिष्ट में 'दक्खिनी का धातु पाठ' के अन्तर्गत जो उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं उनमें अधिकांश तो केरल की दक्खिनी में भी पाए जाते हैं।

६. हिन्दी का प्रभाव मॉप्पिला-साहित्य पर

भारतवर्ष के दक्षिणी छोर का छोटा-सा राज्य है केरल। यहाँ की भाषा मलयालम है। केरल के दक्षिण में स्थित त्रावणकोर तथा कोचिन की बोली संस्कृतनिष्ठ मलयालम है, जो मलयालम के साहित्यिकों के सम्पर्क से समृद्ध हुई है। उत्तरी छोर मलाबार है, जहाँ मुसलमानों की बोली प्रचलित है, जो साहित्य का माध्यम भी है। यह बोली 'मॉप्पिला बोली' कहलाती है और इसका साहित्य मॉप्पिला-साहित्य नाम से जाना जाता है। यह उल्लेखनीय है कि मलाबार के मुसलमानों की साहित्यिक रचनाएँ दक्खिनी हिन्दी से प्रभावित हैं तथा इनकी बोली में हिन्दी के शब्द भी मिलते हैं। यह निर्विवाद सत्य है कि भारत के मुसलमान हिन्दी के विकास में अपनी महत्त्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करते रहे हैं। स्वतन्त्रता-आन्दोलन की लहर उठने के बहुत पहले ही केरल में हिन्दी प्रवेश पा चुकी थी। कण्णूर, कालिकट, कोचिन तथा त्रिवेन्द्रम् में बसे दक्खिनी मुसलमानों के घरों में आज भी दक्खिनी हिन्दी व्यवहृत होती रहती है। हिन्दी में इनकी रचनाएँ भी मिलती हैं। इस प्रकार हिन्दी को पूरे दक्षिण मे फैलाने का श्रेय दक्षिण के दक्खिनी मुसलमानों को मिलना चाहिए।

दक्खिनी हिन्दी की भाँति मॉप्पिला-साहित्य का भी गम्भीर अध्ययन अबतक नहीं हुआ है। आजकल कालिकट-विश्वविद्यालय के मलयालम-विभाग की ओर से मॉप्पिला-साहित्य पर शोध किया जा रहा है।

दक्खिनी हिन्दी और मॉप्पिला-मलयालम्, इन दोनों भाषाओं में उपलब्ध साहित्य के तुलनात्मक अध्ययन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि इन दोनों

भाषाओं के साहित्य में समान तत्त्व ही अधिक हैं। दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध अविच्छिन्न-सा दिखाई पड़ता है। उपलब्ध साहित्य के कतिपय महत्त्व-पूर्ण ग्रन्थों के आधार पर इन दोनों के पारस्परिक सम्बन्ध को व्यक्त किया जायगा।

यह सत्य है कि हिन्दी या दक्खिनी हिन्दी में प्रवाहित सूफी-काव्य की सी सशक्त धारा मलयालम में प्रवाहित नहीं हुई। परन्तु, केरल में भी धर्म-प्रचार के लिए बहुत-से सूफी आये थे। ये भारत के अन्य प्रदेशों से होते हुए यहाँ आये थे। क्योंकि, दक्खिन के मुसलमानों के यहाँ इन्हें आश्रय मिला था। इन सूफियों का प्रभाव मुसलमान जन-समुदाय की भाषा पर पड़े विना नहीं रहा।

यह उल्लेखनीय है कि सूफी घुमक्कड़ थे। वे अपने धर्म–प्रचार के लिए बहुत लम्बी यात्रा किया करते थे। एक उदाहरण से इस बात की सत्यता सिद्ध की जा सकती है। बताया जाता है कि शेख फरीदुद्दीन शकरगंज, जिन्हें हिन्दी के आदिकालीन लेखकों में स्थान प्राप्त है, केरल में आये थे। यह विश्वास किया जाता है कि केरल के एरणाकुलम् जिले में स्थित कांजिरामुट्टम् नामक स्थान में शेख फरीदुद्दीन शकरगंज का मजार है। यहाँ जो मस्जिद है, उसे उन्हीं के नाम से याद किया जाता है। उनके कब्रिस्तान पर सालाना उर्स (वार्षिक जन्मोत्सव) भी होता है। मुसलमान ही क्या, हिन्दू भी बड़ी श्रद्धा के साथ इस सालाना उर्स में भाग लेते हैं और अभीष्ट-सिद्धि के लिए नाना जाति के लोग उनके मजार का दर्शन किया करते हैं। यह इस बात का द्योतक है कि सूफी जहाँ भी गये, वहाँ जनमानस में अपने लिए स्थान पा सके थे। उनके उदार दृष्टिकोण तथा प्रेम-भावना ने विभिन्न जातियों की जनता को परस्पर निकट लाने में सहायता की।

मॉप्पिला-साहित्य में दक्खिनी हिन्दी की भाँति प्रायः सभी प्रमुख काव्य-विधाएँ पाई जाती हैं। यद्यपि गुण और परिमाण की दृष्टि से वे दक्खिनी-साहित्य के समकक्ष नहीं हैं, तथापि उनके आस्वादक जन संख्या की दृष्टि से नगण्य नहीं हैं। मलाबार में कदाचित् ही ऐसा कोई हो, जिसने मॉप्पिला-लोकगीत की एक पंक्ति न सुनी हो और कोई भी मुसलमाल ऐसा नहीं होगा, जिसे कोई एक पंक्ति याद न हो।

मॉप्पिला-साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ तथा मेधावी कलाकार हैं श्री मोयिन कुट्टि वैद्यर। वे 'मॉप्पिला-कविसम्राट्' नाम से जाने जाते हैं। उन्होंने एक सुन्दर प्रेमाख्यान लिखा है, जिसका नाम है 'बदरुल मुनीरुम हुसुनुल जमालुम'। भले ही, इस काव्य का आधार कोई फारसी-काव्य रहा हो, किन्तु उसका गव्वासी के 'सैफुल मुलूक व बदीउज्जमाल' से अद्भुत साम्य है। सूफी-तत्त्व ढूंढनेवालों को इसमें सूफी-तत्त्व भी मिल जायगा। किन्तु, जनसाधारण इसे एक शुद्ध काल्पनिक प्रेमगाथा मानते हैं। इस काव्य में लैला-मजनूं की भाँति बदरुल मुनीर और हुस्नुल जमाल का प्रेम बाल्यकाल से ही है। दोनों चिरसंगी हैं। किन्तु, दोनों के संयोग में बाधा है। इसलिए, दोनों गृहत्याग के लिए उद्यत हो जाते हैं। यहीं प्रेमपथ की कठिनाई भी शुरू होती है। वियोग के दीर्घ तथा क्लेशपूर्ण दिनों में प्रेम की एकनिष्ठता का निर्वाह करते हुए दोनों अपने पथ पर अविचल आगे बढ़ते हैं। अन्त में मिलन होता है।

शिल्प-विधान की दृष्टि से इस काव्य की तुलना किसी भी सूफी-काव्य से की जा सकती है। प्रेम की एकनिष्ठता और विरह का मार्मिक चित्रण बड़ा ही आकर्षक लगता है। दैवी तथा आधिदैविक पात्रों का समावेश करके मिथकीय चमत्कार को भी स्थान देनेवाले कवि दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवियों का स्मरण दिलाते हैं।

ऐसे प्रेमाख्यानक काव्य मॉप्पिला-साहित्य में और भी पाये जाते हैं। 'यूसुफ किस्सा पाट्टु' दक्खिनी तथा उत्तरी हिन्दी तथा अन्य भारतीय एवं विदेशी भाषाओं में रचित 'यूसुफ-जुलैखा' प्रेमाख्यान के समकक्ष है। साहित्य की दृष्टि से इस प्रेमगाथा-काव्य का महत्त्व कुछ कम नहीं है। मॉप्पिला-साहित्य में वर्णित यूसुफ-जुलैखा की कथा का बीज कुरआन से ग्रहण किया गया है और भारतीय वातावरण में उसे चित्रित करके कवि ने सामाजिक चेतना का परिचय दिया है।

श्री मोयिन कुट्टि वैद्यर का बहुचर्चित एवं ख्यातिप्राप्त काव्य 'बदर पड़ा पाट्टु' है। यह वीररसप्रधान युद्धकाव्य है। इसमें कवि की अतुल्य रचना-प्रतिभा तथा कवित्त्व-शक्ति का परिचय मिलता है। इस काव्य की तुलना हिन्दी की किसी भी वीरगाथा से की जा सकती है। युद्ध का ऐसा वर्णन बहुत कम कवियों ने ही किया है। इस काव्य की सबसे बड़ी विशेषता यह है

कि इसे विविध राग-रागिनियों में गाया जा सकता है और आज भी पेशेवर गायक इसे गाते हैं और लोग इसका बड़े चाव से आस्वादन करते हैं।

महाकवि मोयिन कुट्टि वैद्यर कृत प्रेमाख्यानक काव्य 'बदरुल मुनीरुम् हुसुनुल जमालुम्' में प्रयुक्त कतिपय शब्द द्रष्टव्य हैं:

अक्ल, आशिक, इश्क़, इशारा, इनाम, इंसान, ऐब, कदम, कौन, कौल, करीबन, कीमत, कुर्सी, कुदरत, खबर, खैमा, खुशी, खत, गुलाम, चित, जवाब, ज़रूरत, जोड़ी, तख़्त, तलाक़, तमाशा, तीस, दुकान, दुर्र, दिल, दीवान, नगर, नज़्म, नज़र, नारी, परी, बजा, बेजार, बीणा, बीस कोस, बुस्तान, बेग, मुल्क, मन्दिर, मैदान, मुक, महबूब, याकूत, वादा, वक्त, शरण, शर्त, रूह, सात, सितार, सुक, सकल, सब, हवा, हाल, हिरद।[1]

वैद्यर कृत 'बदर युद्धप्पाट्टु' (बदर युद्ध गान) में व्यवहृत कतिपय शब्द द्रष्टव्य हैं:

अंगुल, आलम, इज़्ज़त, ईमान, एक, कबूल, कमीज़, क़ियामत, कोडा (घोडा का तद्भवरूप), ख्याल, खोशि (खुशी), गजब, गैब, चोट, जासूस, ज़ाहिर, जीव, जौहर, ताज, दलील, दिल, दुआ, नमाज़, नही (नहीं), नूर, फिक्र, बयान, बराबर, बला, बगैर, मदद, माल, मिसाल, मुराद, मुसीबत, मेज, मौसम, यकीन, रहमत, लिबास, विरुद्ध, शक, शहीद, शिकायत, शौक़, सच, सबूत, सही, सैर, हक़, हराम, हाजिर, हाल, हासिल, हिजरा, हैरान इत्यादि।[2]

अन्य मॉप्पिला काव्यों में प्रयुक्त शब्द :

उस्ताद, इल्म, कल्ब, दुनिया, किताब, सुबह, तारीख़, रूह, मानिक, खराब, मुसीबत, राहत, बेखबर, साठ, आठ, यक़ीन, बेजार, नुक्सान, सारा, सादा, बोलित (बोलकर), ज़रूरत, मयिना (महीना), वेला, दस्स (दस), सात, उम्र, दूद (दूध), बिल्ली, ताकत इत्यादि।[3]

---

1. बदरुल मुनीरुम हुस्नुल जमालुम, मोयिन कुट्टि वैद्यर
2. बदर युद्धप्पाट्टु, मोयिन कुट्टि वैद्यर
3. मुहियद्दीनमाला, रिफाईमाला, नफीसत्तुमाला, मंजक्कुलममाला

सूफी-साहित्य से सम्बद्ध प्रेमाख्यानों में 'लैला मजनूँ' का नाम भी लिया जा सकता है। सूफियों की प्रशंसा में लिखे गये गीत दक्खिनी हिन्दी में बहुत मिलते हैं, ऐसे ही गीत मॉप्पिला-साहित्य में उपलब्ध हैं, जो 'माला' नाम से जाने जाते हैं। इनमें 'मुहियद्दीन माला', 'रिफाई माला', 'नफीसतु माला' आदि प्रसिद्ध हैं। इन गीतों में सूफियों के चमत्कारपूर्ण जीवन का भक्तिपरक चित्र अंकित किया गया है। 'मुहियद्दीन माला' की तुलना दक्खिनी हिन्दी के सूफी कवि शेख दावल की 'पिरतनामा' से की जा सकती है।

मर्सिया (शोकगीत) की प्रबल परम्परा दक्खिनी हिन्दी में पाई जाती है। मॉप्पिला-कवियों ने भी कर्बला की दुःखद घटना को लेकर इमाम हसन-हुसैन की वीर-मृत्यु का प्रभावशाली चित्र अंकित किया है।

दक्खिनी हिन्दी में प्रचलित अन्य काव्य-विधाएँ भी मॉप्पिला-साहित्य में प्राप्त होती हैं। 'सुहेला' नाम से प्रचलित गीत सूफियों के यहाँ ही नहीं, अपितु जनसाधारण भी बड़े चाव से गाते हैं। सुख और आनन्द के सन्दर्भ में यह गीत गाया जाता है। शादी-ब्याह, पुत्रोत्पत्ति और अन्य आनन्द के अवसरों पर गाये जानेवाले इस गीत का प्रभाव मॉप्पिला-लोकगीतों में देखा जा सकता है।

मॉप्पिला गीतों की आलोचना करते हुए श्री. टी. उबैद ने जो बातें कही हैं वे ध्यान देने योग्य हैं। वे लिखते हैं "एक ही मॉप्पिला गान में सैकडों भिन्न गेय पद्धतियाँ निहित रहती हैं। एक 'रीति' अथवा छन्द एक या दो पृष्ठ का होता है और चौबीस या बत्तीस पादों में समाप्त होता है। तत्पश्चात् एक नवीन छन्द का प्रारम्भ होता है.........अब जो छन्द प्रयुक्त होते हैं उनमें सबसे छोटे छन्द का एक पाद सात अक्षरों में और सबसे बड़ा पाद इकतीस अक्षरों में बनता है। मात्रा की दृष्टि से तेरह से लेकर तैंतीस मात्राओं तक के पाद मिलते हैं। मॉप्पिला कवि इन छन्दों को 'मट्टू' अथवा 'इशल्' कहते हैं"।[1] लोकगीत, युद्धगान, जनश्रुति एवं इतिहास पर अवलम्बित 'केस्सुपाट्टू', प्रेमाख्यान, सूफी संतों की स्तुति में कहे गीत आदि मॉप्पिला साहित्य की विविध विधाएँ हैं।

---

1. साहित्य परिषद् के अठारहवें वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर श्री टी. उबैद द्वारा प्रस्तुत निबन्ध से उद्धृत अंश।

इस प्रकार काव्य-विधा की दृष्टि से इस साहित्य में वे समस्त विधाएँ मौजूद हैं, जो दक्खिनी हिन्दी में प्रचलित हैं। भाषा की दृष्टि से मॉप्पिला-साहित्य का अध्ययन करेंगे, तो आप देखेंगे कि इसपर तमिल का प्रभाव है। साथ ही अरबी-फारसी के वे सारे शब्द इसमें भी प्रयुक्त किये गये हैं, जो हिन्दी तथा दक्खिनी हिन्दी में प्रचलित हैं। मॉप्पिला-साहित्य में कतिपय हिन्दी-शब्दों का प्रयोग भी हुआ है। ये शब्द निश्चय ही दक्खिनी हिन्दी से होकर आये हैं।

मलयालम का मॉप्पिला-साहित्य इस बात की सत्यता सिद्ध करता है कि हिन्दी के सम्पर्क से ही मलयालम में नयी काव्य-विधाएँ उत्पन्न हो सकी हैं। मॉप्पिला-साहित्य में प्रयुक्त विविध काव्य-शैलियाँ हिन्दी के इस प्रभाव को प्रदर्शित करती हैं। हिन्दी के अधिकतर प्रयोग और सम्पर्क से प्रादेशिक भाषाओं को लाभ ही होगा। सम्पर्क-भाषा के रूप में हिन्दी के उपयोग से प्रादेशिक भाषाओं का ह्रास होगा, यह गलतफहमी है। दक्षिण में निर्मित हिन्दी-साहित्य और दक्षिण की प्रादेशिक भाषाओं में निर्मित साहित्य को हिन्दी के प्रचार का बाधक समझनेवालों के लिए हम यह सन्देश देना चाहेंगे कि भारतीय भाषाओं के बीच आपस में कोई वैरभाव नहीं है। वे एक दूसरे के विकास में बाधक नहीं साधक हैं। □

७. उपसंहार

यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रभाषा हिन्दी के लोकप्रिय तथा लोकप्रतिष्ठित स्वरूप के अध्ययन का कितना महत्त्व है। भारतीय भाषाओं में हिन्दी को ही समस्त देश में फैलने का श्रेय मिला। जो लोग हिन्दी को दरिद्र कहते हैं, उसकी साहित्यिक-समृद्धि पर संदेह प्रकट करते हैं, उनको चाहिए कि वे हिन्दी की विविध बोलियों में उपलब्ध साहित्य का अवलोकन करें। देश के विस्तृत आँचलों में प्रयुक्त हिन्दी की विपुलता और बहुरूपता देखकर कोई भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकेगा।

हिन्दी का सौन्दर्य और सारल्य भी उसकी बोलियों में, जो जनता की ज़बान पर रहती हैं देखा जा सकता है। हिन्दी का यह एक विशिष्ट गुण रहा है कि वह जहाँ भी गई वहाँ सम्पर्क भाषा का दायित्व निभाती रही। विदेशी लिपि के साथ-साथ क्षेत्रीय भाषाओं की लिपियों में भी हिन्दी अभिव्यक्त हुई। हिन्दी का एक अन्य गुण यह है कि वह हिन्दीतर प्रदेशों में भी साहित्य का माध्यम बन सकी। चाहे पंजाब की हिन्दी रचना को लें चाहे बंगाल की, हम यह बात समझ सकते हैं कि हिन्दी को समृद्ध करने में इन प्रदेशों की जनता का योगदान महत्वपूर्ण रहा है। जब हम उत्तर से दक्षिण भारत की ओर आते हैं तब हमें यह जानकर अपने आनन्द का ठिकाना नहीं रहता कि दक्षिण भारत का कोई भी इलाका ऐसा नहीं है जहाँ हिन्दी को समृद्ध करने का सफल प्रयास नहीं किया गया हो। यह भी उल्लेखनीय बात है कि मराठी और गुजराती भाषी क्षेत्रों में खड़ीबोली का प्रचार-प्रसार उसी काल में हुआ जिस काल में खड़ीबोली उत्तर में भी अभिव्यक्ति का माध्यम बन रही थी।

अब आप द्रविड़ भाषा क्षेत्रों का पुराना इतिहास पढ़िए। तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम भाषा-भाषी इलाकों में हिन्दी पारस्परिक सम्पर्क का माध्यम ही नहीं बल्कि साहित्यिक अभिव्यंजना की वाहिका भी बन गई!

दक्षिण भारत में निर्मित साहित्य ग्रन्थों की संख्या देखकर आप निश्चय ही दाँतों तले उँगली दबाएँगे। आप हैदराबाद के सालार जंग म्यूज़ियम, स्टेट सेन्ट्रल लाइब्रेरी और उस्मानिया विश्वविद्यालय की लाइब्रेरी में जाइए, अरबी-फारसी लिपि में निर्मित हिन्दी के साहित्यिक ग्रन्थों को देखकर यह सोचने को मजबूर हो जाएँगे कि हिन्दी के साहित्यान्वेषी और राष्ट्रभाषा के प्रचारक इन साहित्य ग्रन्थों को अपनाने में क्यों हिचकिचाते हैं? राष्ट्रभाषा के साहित्यक वैभव को देखकर ऐसा कौन राष्ट्र प्रेमी होगा जिसे गर्व महसूस नहीं होता। यह भी बड़े आश्चर्य की बात है कि दक्खिन या दक्षिण भारत में निर्मित इन विपुल साहित्य रत्नों को हिन्दी की मुख्य धारा में स्थान न देकर उस पर अलग से विचार किया जाता है। अवधी में निर्मित साहित्य फारसी लिपि में लिखे जाने पर भी हिन्दी के विद्वानों ने देखा-पहचाना, उसकी परख की और जायसी के पद्मावत् जैसी कालजयी रचना से हिन्दी साहित्य की समृद्धि हुई। किन्तु, यह बड़ा ही विचित्र लगता है कि दक्षिण भारत में अर्थात् हिन्दीतर प्रदेश में निर्मित पुराने साहित्य की उपेक्षा की जा रही है। उत्तर की साहित्य सम्पत्ति को संचित करने तथा प्रकाशित करने के लिए जितने उत्साह से काम करते हैं उसके दुगुने उत्साह से दक्खिनी साहित्य का अध्ययन-अनुशीलन भी किया जाना चाहिए। किन्तु, दुख की बात है कि उत्तर के हिन्दी विद्वान विन्ध्याचल के दक्षिण के हिन्दी साहित्य को स्वीकार करने में संतोष का अनुभव नहीं करते।

हिन्दी का साहित्य नागरी लिपि में ही नहीं बल्कि फारसी और क्षेत्रीय भाषाओं की लिपियों में भी लिपिबद्ध हुआ है। गुजरात में गुजराती लिपि में निर्मित पुरानी हिन्दी रचनाएँ मिलती हैं। इधर केरल में मलयालम की पुरानी लिपियों में हिन्दी के व्यावहारिक रूप को प्रचलित करने का स्तुत्य प्रयास किया गया। हिन्दी के ये रूप विविधता लिये हुए हैं। लेकिन उसका मूल ढाँचा एक ही है। इसलिए यह परम आवश्यक है कि हम हिन्दी के उस स्वरूप को जन सम्मुख लायें जो उसे हिन्दीतर प्रदेशों में युगों पहले प्राप्त हुआ था। क्षेत्रीय भाषाओं के बीच में रहकर हिन्दी ने किसी क्षेत्रीय भाषा के

विकास को रोका नहीं। हिन्दी प्रत्येक अंचल से शब्दों को अपनाकर खुद समृद्ध हुई और अपने सम्पर्क में आई भाषा को भी उसने समृद्ध किया। लेन-देन की इस नीति को लेकर हिन्दी समस्त भारत में अपना सिक्का जमा सकी। हिन्दी की यह प्रवृत्ति उन दिनों प्रवल थी जब हमारा देश राजनीतिक दृष्टि से आज की तरह एक शासन के अधीन इकट्ठा नहीं हुआ था।

अब हमें चाहिए कि हिन्दी को वह पुराना वैभव पुनः दें, दिलाएँ। वह सम्पर्क भाषा का काम ही नहीं बल्कि प्रत्येक प्रादेशिक भाषा के साथ रहकर साहित्य निर्माण का काम भी करे। इस तरह हिन्दी अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा पुनः प्राप्त करे। मध्य युग में हिन्दी एकता का सशक्त सूत्र बनकर धर्म के नाम पर झगड़ा करनेवाले विभिन्न सम्प्रदाय के लोगों को परस्पर प्रेम करने का संदेश देती थी। आज हमें उस प्रेम के संदेश का पुनः प्रचार करना है। हिन्दी के माध्यम से जनता के बीच के अनबन और वैर भाव को मिटाना है। इस दृष्टि से हमें दक्खिन में निर्मित साहित्य को प्रकाश में लाना चाहिए। जो सत्साहित्य हमें दक्खिनी में मिलता है उसका अध्ययन-अनुशीलन करके हिन्दी का शृंगार करना है, उसके लोकप्रिय स्वरूप का प्रचार करना है।

हिन्दी को राष्ट्रभाषा का सम्मानित पद तभी प्राप्त होगा जब वह राष्ट्रव्यापी स्वरूप से अपने को सजाएगी। हिन्दी राष्ट्रभाषा के महान पद पर आसीन होकर अपने राष्ट्रीय विशेषण को सार्थक तभी बना सकती है जब वह अपने राष्ट्रीय व्यक्तित्व को अपने भीतर समाने में समर्थ हो। स्मरण रखिए, हिन्दी का राष्ट्रीय व्यक्तित्व हिन्दी प्रदेश की जनता का व्यक्तित्व ही नहीं वरन् भारतवर्ष के समस्त जन-समुदाय का सम्मिलित व्यक्तित्व है। भावात्मक ऐक्य को सुदृढ़ करने केलिए भी अनिवार्य है कि हिन्दी के देशव्यापी स्वरूप को पोषित करें, उसको अपनायें और उस का प्रचार करें। समय की यह बहुत बडी माँग है कि युगों पहले दक्षिण भारत में निर्मित हिन्दी साहित्य का अध्ययन अनुशीलन करें। इधर दक्षिण की तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम भाषाओं के बीच में हिन्दी सृजन का माध्यम बनाकर विकास करती गई।

जनपदीय बोलियों में निर्मित साहित्य ही हिन्दी की अक्षय निधि है। भाषा का लोकप्रिय तथा जीवन्त रूप भी इन्हीं जनपदीय बोलियों में पाया जाता है, जिसकी उपेक्षा से हिन्दी दरिद्र हो जाएगी, हिन्दी का क्षेत्र विस्तार में मलयालम भाषी क्षेत्र से भी छोटा हो जाएगा। जिस प्रकार अवधी, ब्रज और

खड़ीबोली हिन्दी काव्य गंगा की पोषक सरिताएँ हैं । उसी प्रकार दक्षिण भारत में प्रचलित खड़ीबोली का आदि रूप दक्खिनी भी हिन्दी को पुष्ट करने-वाली बलवती धारा है । जैसे हिन्दी के पश्चिमी, पूर्वी और उत्तरी रूप हिन्दी के ही अभिन्न अंग समझे जाते हैं वैसे उसके दक्खिनी रूप को भी समझना चाहिए ।

दक्खिनी हिन्दी के अध्ययन से लाभ

अब हम इस बात पर विचार करेंगे कि दक्खिनी के अध्ययन से क्या प्रयोजन है । हिन्दीतर प्रदेश में विशेषकर द्रविड क्षेत्रों में हिन्दी को प्राप्त स्वरूप का महत्व बडा ही है, जिसके अध्ययन से यह भय निराधार सिद्ध कर सकते हैं कि हिन्दी के विकास से, उसको सम्पर्क भाषा के रूप में स्वीकार करने से प्रादेशिक भाषाओं की प्रगति रुक जाएगी । यह धारणा भी निर्मूल की जा सकती है कि हिन्दी का संस्कृत निष्ठ स्वरूप स्वातंत्र्योत्तर काल की भाषा नीति का ही परिणाम है और यह प्रवृत्ति आधुनिक काल में ही हुई है ।

दक्खिनी के अध्ययन से अनेक लाभ हैं, पहला भाषावैज्ञानिक दृष्टि से दक्खिनी के अध्ययन किए जाने से खड़ीबोली हिन्दी के विकास के अनेक अज्ञात पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है । दूसरा, हिन्दी को हिन्दीतर प्रदेशों में—आर्य और द्रविड़ भाषा क्षेत्रों में प्राप्त स्वरूप का ज्ञान हमें दक्खिनी प्रदान करती है । क्योंकि दक्खिनी का उदय और विकास उस विस्तृत इलाके में हुआ जहाँ मराठी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम बोली जाती हैं । अतः इन भाषाओं का प्रभाव दक्खिनी पर पडे बिना नहीं रहा, जिसका ज्ञान हमें दक्खिनी में निर्मित साहित्य से मिलता है । तीसरा, दक्खिनी में उत्तर की पंजाबी, राजस्थानी और हिन्दी की अन्य बोलियों जैसी ब्रज, अवधी हरियानी आदि के तत्त्व भी पाये जाते हैं ।

केरल में प्रचलित 'हिन्दुस्तानी' भी दक्खिनी का केरलीय रूप है । मलयालम के मॉप्पिला साहित्य से भी दक्खिनी का सम्बन्ध है । साहित्यिक दृष्टि से दक्खिनी हिन्दी के अध्ययन का बड़ा महत्व है ।

जब उत्तर भारत में खड़ीबोली साहित्यिक भाषा के गौरवपूर्ण पद से अपदस्थ हो गई तब वह दक्षिण की रियासतों में सृजन का माध्यम बनकर उत्तर

में खोयी हुई अपनी प्रतिष्ठा दक्खिन में पा सकी। उसने उत्तर की क्षीण सूफ़ी साहित्यिक-धारा को तेज और शक्ति प्रदान करके दक्षिण भारत में प्रवाहित किया। इस प्रकार दक्खिनी ने सूफी साहित्यिक धारा को सार्वदेशिक बनाया।

शोकगीत की परम्परा हमें दक्खिनी साहित्य में मिलती है। पश्चिमी साहित्य में उसके उद्भव की खोज करना वास्तव में अपनी साहित्यिक-सम्पत्ति से हमारी अज्ञानता ही प्रकट करती है।

खड़ीबोली मे गद्य साहित्य का उदय और विकास भी आँगल साहित्य की देन मानी जाती है। जानम के 'कलिमतुल हकायक' में गद्य विधा के प्रारम्भिक प्रयास देखे जा सकते हैं। महाकवि वजही महान गद्यकार भी हैं। उनकी गणना संसार के प्रारम्भिक निबन्धकारों में की जानी चाहिए। आप पश्चिमी निबंधकार मोन्टैन (फ़्रान्सीसी) और बैकन (अंग्रेजी) के समकालीन रहे हैं।

खड़ीबोली का आदि आख्यानक काव्य दक्खिनी में लिखा गया। आज से पौने छ: सौ वर्ष पूर्वलिखित इस ग्रन्थ (मसनवी कदमराव पदमराव-फख्रुद्दीन निज़ामी कृत) की भाषा हिन्दी का अखिल भारतीय स्वरूप प्रदर्शित करती है। इसमें अपभ्रंश, प्राकृत, हिन्दी की ब्रज, अवधी, हरियानी हिन्दीतर आर्यभाषाओं में राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के तत्त्व एक साथ वर्तमान हैं। संस्कृतनिष्ठ भाषा की ओर इसका झुकाव है। इसमें प्रयुक्त बारह सहस्र शब्दों में दस सहस्र शब्द संस्कृत मूलक हैं। इसमें अरबी-फारसी शब्दों को हिन्दी की सहज प्रवृत्ति के अनुरूप ढालने की कोशिश की गई है।

हिन्दी के वीरगाथाकालीन काव्यों के स्मरण दिलानेवाले अनेक युद्ध काव्य भी दक्खिनी हमें प्रदान करती है। दक्खिनी में वार्ता साहित्य की एक सुदीर्घ परम्परा भी मिलती है। यह तो बता चुके हैं कि दक्खिन में हिन्दी अरबी फारसी लिपि में प्रस्तुत हुई। केरल में मलयालम की पुरानी लिपि में और अरबी-हिन्दी लिपि में हिन्दी का प्रचार किया गया। केरल में प्रचलित दक्खिनी हिन्दी मलयालम का प्रभाव भी प्रदर्शित करती है। मलयालम को भी हिन्दी के सम्पर्क से लाभ ही हुए। इसका सबूत हमें केरल में प्रचलित दक्खिनी से मिलता है।

दक्षिण में प्रचलित हिन्दी में रूपों और शब्दों की दृष्टि से खड़ीबोली, हरियाणी, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, मराठी, गुजराती, तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम का सम्मिलित प्रभाव है। एक ही वस्तु केलिए प्रयुक्त विभिन्न पर्यायवाची शब्दों में और शब्दों के विकृत रूपों में अनेक भाषाओं के सम्मिलित तत्त्व देखे जा सकते हैं। इस प्रकार दक्षिण भारत में प्रचलित हिन्दी अनेक भाषाओं के सम्पर्क में रहकर अपना विकास करते हुए राष्ट्रीय व्यक्तित्व से सम्पन्न हो गई। हिन्दी की अनेक बोलियों के अलावा अन्य आर्य तथा द्रविड़ परिवार की भाषाओं के तत्त्वों को ग्रहण करते हुए हिन्दी ने दक्षिण में जो रूप प्राप्त किया उसकी उपेक्षा करना अवांछनीय ही नहीं बल्कि निन्दनीय भी है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि हिन्दी की शक्ति और समृद्धि उसकी जनपदीय बोलियों में ही पायी जाती है। ऐतिहासिक कारणों से हिन्दी अरबी-फारसी से भी प्रभावित हुई।

केरल में लगभग दो सौ वर्ष पूर्व लिखित जो ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थ उपलब्ध हैं उनमें प्रयुक्त प्रशासनिक शब्दों से हमें इस बात की जानकारी मिलती है कि अरबी-फारसी शब्द हिन्दी के सम्पर्क से ही मलयालम को मिले हैं। प्रशासन और प्रशासनिक अधिकारियों एवं कर्मचारियों से सम्बद्ध कतिपय अरबी-फारसी शब्द प्रस्तुत किए जा रहे हैं जो मलयालम में भी वैसे ही प्रयुक्त होते हैं जैसे हिन्दी में:

आबकारी (फा.) कस्बा (अ.), जब्ती (तु.), खजांची (फा.), खजाना (फा.), जिला (अ.), वकील (अ.), सरकार (फा.), सिफारिश (फा.), तहसील (अ.), हाज़िर (अ.), मुख़्तार (अ.), मुन्सिफ़ (अ.) आदि।

केरल में व्यवहृत दक्खिनी में जब उपर्युक्त शब्दों एवं उसी प्रकार के अन्य शब्दों का प्रयोग किया जाने लगा तब उन्हें मलयालम के उच्चारण के अनुरूप परिवर्तित करके ही प्रयुक्त किया जाता था। उदा:—

दक्खिनी हिन्दी रूप	हिन्दी रूप	मलयालम रूप
कचेरी	कचहरी	कच्चेरि
सरकार	सरकार	सरकार

दक्खिनी हिन्दी रूप	हिन्दी रूप	मलयालम रूप
तय्यार	तैयार	तय्यार
अर्जी	अर्जी	हर्जि
हाजर	हाज़िर	हाजर
जामीन	जामीन	जाम्यम्
जप्त	जब्त	जप्ति
दिवान	दीवान	दिवान
गुमास्ते		गुमस्तन्

उपर्युक्त शब्दों में जो ध्वनिगत एवं रूपगत परिवर्त्तन पाया जाता है वह दक्खिनी पर मलयालम का असर प्रकट करता है !

हिन्दी के विविध रूप उसकी लोकप्रियता एवं सर्वव्यापकता के प्रमाण हैं। वह जहाँ भी गई वहाँ अपने अस्तित्व को बनाये रखने में सफल हुई। विविध आँचलिक प्रभावों के प्रवाह में भी वह अपनी अस्मिता खो नहीं गई। यह वड़ी बात है। आज की हिन्दी अंग्रेजी से जितनी प्रभावित हुई और हो रही है उसी प्रकार उन दिनों की हिन्दी अरबी-फारसी से अत्यधिक प्रभावित हुई। इस तरह अपने सम्पर्क में आनेवाली भाषा या भाषाओं से प्रभावित होना हिन्दी की समृद्धि एवं विकास का द्योतक है। आधुनिक काल में बम्बइया हिन्दी और कलकत्तिया हिन्दी का जितना महत्त्व है उतना या उससे भी ज़्यादा महत्त्व दक्खिन में प्रचलित हिन्दी का है। राजभाषा या राष्ट्रभाषा के रूप में हिन्दी का प्रचार करते समय हमें उसके जनपदीय स्वरूपों को विशेषकर हिन्दीतर प्रदेशों में युगों पहले उसे प्राप्त स्वरूपों को ग्रहण करके आगे बढ़ना चाहिए। क्षेत्रीय भाषाओं के शब्दों को हिन्दी में स्वीकार करते समय हमें यह देखना चाहिए कि क्या हिन्दी में यह शब्द पहले कभी प्रयुक्त किया गया था या नहीं। यदि हिन्दी में प्रयुक्त किया गया हो तो हमें उसके पुराने स्वरूप को ही ग्रहण करना चाहिए जो सहज और स्वाभाविक होता है। ये रूप दक्षिणवालों केलिए प्रिय भी होते हैं। क्योंकि ये रूप दक्षिणी भाषाओं से हिन्दी के टक्कराने से बने हैं।

कहने का मतलब यह है कि लोकप्रिय रूप ही जनपदीय रूप है। चाहे

उत्तर के हों या दक्षिण के उन रूपों को हमें हिन्दी के शब्द भण्डार में स्थान देना चाहिए। नवीन शब्दों को गढकर कृत्रिमता को बढाने के बदले हमें चाहिए कि भाषा के सहज एवं स्वाभाविक स्वरूप पर ध्यान दें। व्यवहार में चिरप्रतिष्ठित शब्दों को फिर से अपनायें, उनका प्रयोग करें, प्रचार करें। प्रशासन की भाषा, उच्च शिक्षा का माध्यम, सम्पर्क भाषा आदि अनेक स्तरों पर हिन्दी का प्रयोग किया जाने लगा है और धीरे-धीरे हिन्दी का अधिक-से-अधिक प्रयोग होता जाएगा। जब देश की समस्त क्षेत्रीय भाषाओं में निर्मित सभी उत्तम साहित्य भी हिन्दी में उपलब्ध कराया जाएगा तब हिन्दी सम्पर्क भाषा का अपना दायित्व सफलता पूर्वक निभा सकेगी।

अब प्रशासन एवं व्यापार के क्षेत्रों में हिन्दी का उपयोग बढ़ता जा रहा है। धीरे-धीरे वह हमारे सम्पूर्ण साहित्य की सशक्त वाहिका भी बनेगी। हिन्दी के इस विकासक्रम में उसके आँचलिक रूपों को समाविष्ट करना अनिवार्य है और इस दृष्टि से हमें हिन्दी के उस स्वरूप का अध्ययन करना चाहिए जो उसे दक्खिन के हिन्दीतर प्रदेश में राजभाषा की हैसियत से प्राप्त हुआ था।

अंत में डॉ. रामविलास शर्मा के ये शब्द दुहराना चाहते हैं, "हम अन्य भारतीय भाषाओं का विकास देखें, उनके साथ कदम मिलाकर चलें, हम अपने पुराने साहित्य की भाषाई विरासत को अपनाएँ, उसे छोड़कर आगे न बढें; हम अपनी जनपदीय बोलियों से सम्पर्क बनाये रहें, अपनी नगर भाषा को उन्हें छोड़कर संस्कृत या फारसी की तरफ भागने न दें।" डॉ. रामविलास शर्मा के इन शब्दों के साथ हम यह भी जोड़ना चाहते हैं कि हिन्दीतर प्रदेश में विकसित हिन्दी की बोली को अपना कर हिन्दी के अखिल भारतीय स्वरूप को सँवारें। अन्य भारतीय भाषाओं से शब्द ग्रहण करने में भी संकोच का अनुभव न करें। □
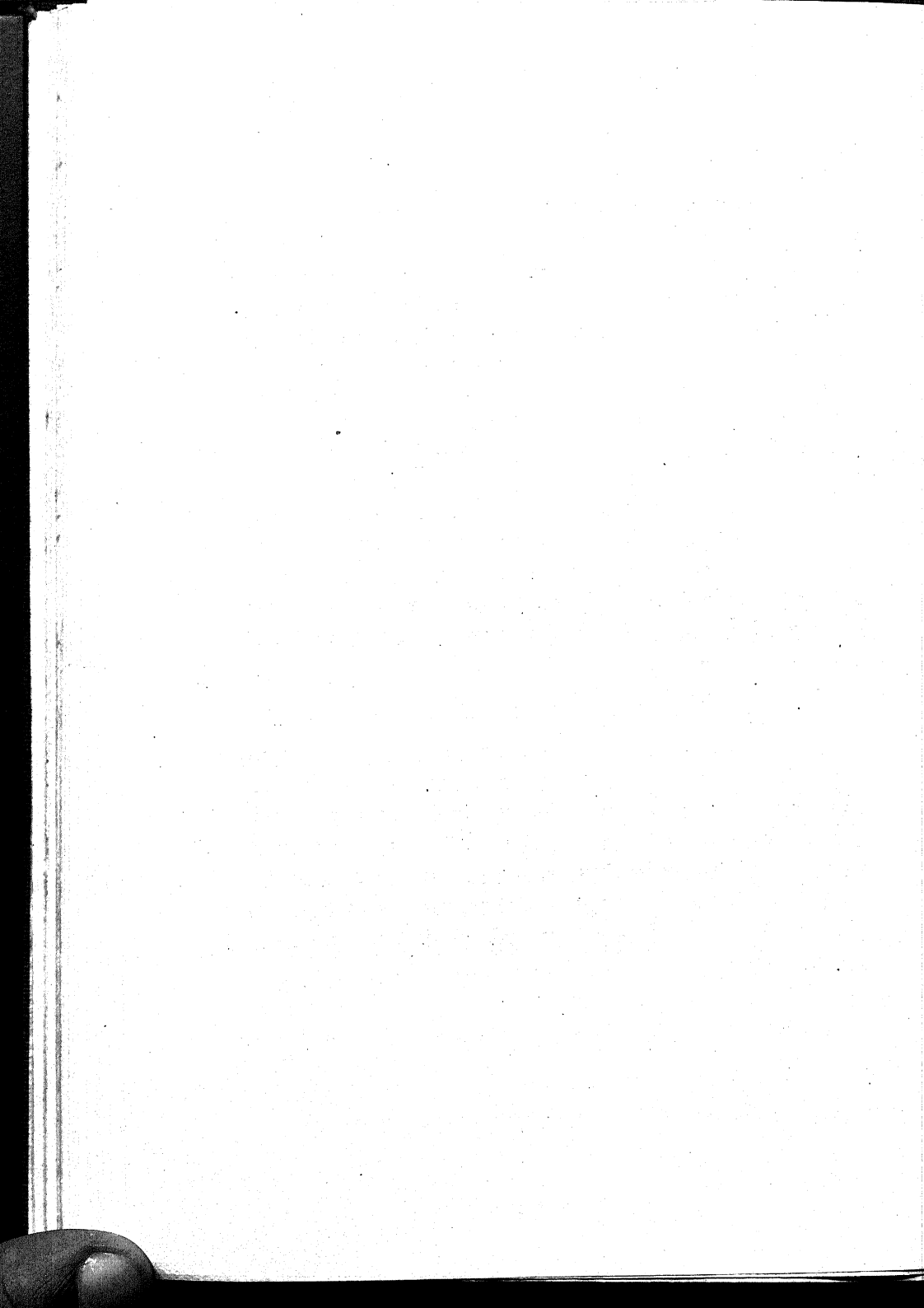
परिशिष्ट

दक्खिनी हिन्दी का धातुपाठ

दक्खिनी हिन्दी के विविध ग्रन्थों में प्रयुक्त क्रियाओं के आधार पर निम्नलिखित धातुओं की सूची प्रस्तुत की जा रही है। दक्खिनी की इन धातुओं में कतिपय ऐसी हैं जो हिन्दी और उर्दू में प्रयुक्त नहीं होतीं। हिन्दी के जनपदीय रूप की समृद्धि को समझने केलिए धातुओं का परिचय सहायक है।

१ अंदेशना

२ अंपडना, अपडना
(पहुँचना, पाना)
अंपडाना

३ अघाना, अघवाना
(प्रे.) (सैर होना, सैर करना)
तृप्त होना

४ अचना, अच्चनां, अछना, आछना
(रहना, होना)

५ अटकना, अटकानां

६ अड़ना

७ अडड़ाना

८ अबरेकना
(देखना)

९ अभासना
(आभास देना, देखना)

१० अरड़नां
(चिल्लाना, ज़ोर से पुकारना),
अरड़ाना

११ अबटना, अवटाना

१२ आंजना

१३ आंदना (समझनां)

१४ आखना (कहना)

१५ आजमानां

१६ आनना
(लाना)

१७ आना, आवनां

१८ इंटना

१९ उँगना, ऊँघना
(ऊँघना)
२० उगना
२१ अखाड़ना
२२ उखारना
(खोलना)
२३ उगालना
२४ उघाना
(लगाना),
उघवाना
(प्यास बुझाना)
२५ उचना, उचाना
(उछाना)
२६ उचाटना
(मन किसी बात में से उठ जाना)
२७ उछलना, उछालना
२८ उजड़ना
२९ उठना, उठाना, उठावाना
३० उड़ना, उड़ाना
३१ उड़ाना
(उलाहना)
३२ उड़ाना, उढाना
(ढाँकना)
३३ उतारना
३४ उधारना
(बेसहारा करना)
३५ उपचना, उपजना
(उभरना, निकालना)
३६ उनपना
३७ उपटना
(बिगड़ना)
३८ उपसना
(उपासना करना)
३९ उपाना
(पैदा करना)
४० उबकना
(उभरना)
४१ उबना
(उभरना)
४२ उबरना
(शेष रहना)
उभरना, उबारना
(छोड़ना)
४३ उभटना
(उभरना)
४४ उलंगना
(लांघना)
४५ उलाना
(गरम करना)
४६ उलटना
(लौटना)
४७ उलठना
(पलटना)
४८ उलटाना
(चिल्लाना)
४९ उलगाना
(पार कराना)
५० ऊटना
(उठना)
५१ ऊठना
(उठना)
५२ ऊडना
(उडना)

५३ ऊतरना
(उतरना)
५४ ऊभना
(ऊँचा होना)
५५ ऐंठना
५६ ओडना, उढाना
५७ ओहड़ना
(ओढ़ना)
५८ औकालना
५९ कचकचाना
६० कचवाना
(असंतुष्ट होना, हिम्मत हारना, शरमाना)
६१ कटाना
६२ कड़ना
(कढ़ना),
काड़ना
(काढ़ना)
६३ कड़कना
६४ कबूलना
(हिन्दी - उर्दू में कबूल करना)
६५ कमाना
६६ करना, कराउना
६७ कलंकना
६८ कलकलाना
६९ कलाना
(कहलाना)
७० कलाना
(मिलाना, मिश्रित करना, लड़ना)
७१ कसना
७२ कसबिकसना
७३ कहना, कहाना, कहवाना, कहलाना
७४ काँपना
७५ काटना
७६ कातना
७७ कासना
७८ कुड़ना
(कुढ़ना)
७९ कुमलाना
८० कुहकना
८१ कूकना
८२ कूटना
८३ कूतना
८४ कूदना
८५ कोंडना
(बंद करना)
८६ कोंदना
(रुकना)
८७ कोसना
८८ खंकारना
८९ खंडना
९० खदकना
९१ खदेडना
९२ खड़ना
(पड़ना)
९३ खपना, खपाना
९४ खमना
(झुकना)
९५ खसना

९६ खांपना
(झुकना)
९७ खाड़ना
(निकालना)
९८ खाना, खिलाना
९९ खिकरना
१०० खिछाना
१०१ खिजना, खिजाना
१०२ खिलना, खिलाना
१०३ खिसना
१०४ खींचना, खेंचना
१०५ खुंदलाना
१०६ खुजलना, खुजलाना
१०७ खुजाना
१०८ खुलना, खुलाना
१०९ खेलना, खेलाउना
११० खैंचना
१११ खोंचना
(घुसना, जख्मी करना)
११२ खोजना
११३ खोदना, खुदाना
११४ खोरना
११५ खोलना
११६ गंवाना
११७ गजगजाना
(चमकना)
११८ गडना
(गढ़ना, बनाना)
११९ गड़गड़ाना
(गरजना)
१२० गमना
(खोना), गमाना
१२१ गरजना
१२२ गलना, गालना, गलाना
१२३ गाजना
(गरजना)
गजाना
१२४ गाड़ना
१२५ गाढ़ना
१२६ गाना, गवाना (प्रे.)
१२७ गिनना, गिनवाना (प्रे.)
१२८ गिलना
१२९ गुंदना
(गूंथना),
गूंदना
(गूँथना, सक.)
१३० गुजना
१३१ गुज़रना, गुज़ारना
१३२ गुनना
(गूँथना), गुनाना (प्रे.)
१३३ गुमना
(खोना)
१३४ गुरगुराना
१३५ गुसना
१३६ घटना
१३७ घड़ना
(बनना)
१३८ घसना
१३९ घसरना
१४० घूमना, घुमाना

१४१ घुरकाना
१४२ घुसना
१४३ घूरना
१४४ घेरना
१४५ घोटना
१४६ घोलना
(पीसना, मिलाना)
१४७ चकना
(चखना),
चाकना
(चाखना),
चकाना
१४८ चकलना
(दबाना)
१४९ चड़ना, चढ़ना, चढ़ाना
१५० चमकना
१५१ चलना, चलाउना
१५२ चहचहाना
१५३ चहना
१५४ चांपना
(दबाना)
१५५ चाटना, चटाना
१५६ चाबना
१५७ चिंतना, चींतना
१५८ चिकलना
(कुचलना)
१५९ चिड़ना, चिड़ाना
१६० चितरना, चितारना
१६१ चिरड़ना
१६२ चिलाना
(चिल्लाना)
१६३ चीनना
(पहचानना)
१६४ चुकना, चूखना, चुकाउना
१६५ चुनना
१६६ चुबना
(चुभना)
१६७ चुमटना
१६८ चुरमुराना
१६९ चुराना
१७० चुलबुलाना
१७१ चुभना
१७२ चोखना
१७३ चोदना
१७४ चोरना, चुराना
१७५ छडना
१७६ छकना
१७७ छड़ना, छाड़ना
१७८ छनकना
१७९ छपना, छुपाना
१८० छलना
१८१ छांटना
१८२ छानना
१८३ छाना
१८४ छिजना
१८५ छिनकना छिनकाना
१८६ छिपना, छुपना, छिपाना
१८७ छीकना
१८८ छीलना
१८९ छुटना, छूटना
१९० छेदना
१९१ छोड़ना, छुड़ाना

१९२ जकड़ना
१९३ जगमगाना
१९४ जड़ना
१९५ जताना
१९६ जनना
(जन्म देना)
१९७ जनाना
(प्रकट करना)
१९८ जपना
(सेवा करना)
१९९ जमना, जमांना
२०० जलना, जलाना, जालना
(बताना, जताना)
२०१ जागना, जगाना
२०२ जाना
२०३ जाणना
२०४ जानना
२०५ जामना
२०६ जिरवना
(अंदर के अंदर समा लेना)
२०७ जीना, जिलाना
२०८ जीवना
(जीवित रहना)
२०९ जुड़ना, जुड़ाउना, जोड़ना
२१० जुरोना
(जुड़ाना)
२११ जोतना
२१२ जोना
(तलाश करना, देखना)
२१३ झटकना
२१४ झगड़ना
२१५ झड़ना
२१६ झडझड़ाना
२१७ झमकना
(चमकना)
२१८ झलकना
२१९ झलझलना
२२० झांकना
२२१ झांपना
(ढक देना)
२२२ झाड़ना
(साफ करना, तोड़ना)
२२३ झुकना
२२४ झुटलाना
(असत्यभाषी बनाना)
२२५ झुटालना
(खाद्य पदार्थ झूटा करना)
२२६ झूलना, झुलाना
२२७ टक्कलना
२२८ टांगना, टंगाना
२२९ टाकना
(डालना)
२३० टिकना
२३१ टिघरना
२३२ टिटकना
२३३ टटना, टूटना
२३४ टोहना
२३५ ठकना, ठकाना
२३६ ठाड़ना
(खड़ा रहना)
२३७ ठानना
२३८ ठारना
(ठहरना)

२३९ ठेकना
२४० ठोकना
२४१ ठोसना
२४२ डंकारना
२४३ डगमगाना
२४४ डरना, डराना
२४५ डाटना
(भीड़ करना)
२४६ डालना
२४७ डुलना
२४८ डूना
(ढलकना)
२४९ डूबना, डुबाना
२५० डोलना
२५१ ढक्कलना
२५२ ढलकना
२५३ ढांकना
२५४ ढ़ालना
२५५ ढुंडना, ढूंडना, ढुंदना
२५६ ढुणारना
२५७ ढुंढ़ना
२५८ ढोना, ढुलाना
२५९ तकना
२६० तचना
(खोलना)
२६१ तड़खना
२६२ तड़पड़ना, तरफड़ाना
२६३ तपना, तापना
२६४ तरसना
२६५ तलना
२६६ तलमलना।
(हार्दिक व्यथा से बेचैन होना)
२६७ ताजना
(ताज पहनना)
२६८ ताड़ना
२६९ तिनकना
२७० तिलमिलाना
२७१ तैरना, तीरना, तिराना,
तैराना
२७२ तूटना
(टूटना)
२७३ तोड़ना, तुड़ाउना
२७४ तोलना, तुलाना
२७५ थंचना
(थपकना)
२७६ थंबना
(रुकना)
२७७ थकना, थाकना
२७८ थड़ना
(ठंडा होना)
२७९ थपकना
२८० थपना
२८१ थमना, थामना
२८२ थावटना
२८३ थिजना
(चकित रहना)
२८४ थिरकना
२४५ थूकना
२८६ थोपना
२८७ दंदलाना
(संघत करना)

२८८ दंदसारना
(बदला लेना)
२८९ दटाना
(डटाना)
२९० दड़ना
(छिपना)
२९१ दधना
(धधना)
२९२ दपना
(पीना)
२९३ दबना, दाबना, दबाना
२९४ दहकना
२९५ दागना
(दाग़ना)
२९६ दाटना
(डाटना, पूरी तरह भरना, मारना)
२९७ दालना
(डालना)
२९८ दिकना, दिखना, दिखलाना
२९९ दिसना
(दिखाई देना)
३०० दीठना, दिठना
३०१ दीपना, दिपाना
३०२ दीसना
३०३ दुंदलाना, धुंदलाना
३०४ दुखना, दुखाना
३०५ दुगदाना
(तक्लीफ़ देना)
३०६ देकना
३०७ देखना, दिखाउना
३०८ देना, दिलाना
३०९ दौड़ना, दौड़ाना
३१० धकधकाना, धगधगाना
(आग का ज़ोरों से जलना)
३११ धजना
३१२ धरना
३१३ धमकाना
३१४ धसना
३१५ धाना
३१६ धारना
३१७ धुंदना
(ढूंढना)
३१८ धुजना, धूजना
३१९ धुनना
३२० धूंडना
३२१ धूंमाना
३२२ धोकना
३२३ धोना, धुलाना
३२४ धोरना
३२५ नंगानां
(लज्जित करना)
३२६ नहटना, नहाटना
(भागना)
३२७ नहना
३२८ न्हासना
(दौड़ना),
निहसलाना
(दौड़ाना)
३२९ नांगरना
३३० नांदना
(रहना)
३३१ नाचना, नांचना, नजाना
३३२ नाना
(झुकाना),
नवाना (प्रे.)

३३३ नाना
(झुकाना),
नवाना (प्रे.)

३३४ निबेरना

३३५ निकलना, निकालना

३३६ निगलना

३३७ निचोरना

६३८ निझाना
(गौर से देखना)

३३९ नितारना

३४० निपचना, निपजना
(पैदा होना)

३४१ निपटना

३४२ निपना
(पैदा होना),
निपाना
(पैदा करना)

३४३ निबाड़ना
(निबेड़ना)

३४४ निभाना

३४५ निरजना

३४६ निवाना
(झुकना)

३४७ निवारना
(रोकना, दूर करना)

३४८ निसारना

३४९ निहजना

३५० निहूडना

३५१ नींदना

३५२ नुंगलना

३५३ पंगाना
(पेंग मारना)

३५४ पंचना
(टपकना)

३५५ पकना, पकाना, पकाउना

३५६ पकड़ना, पकड़ाना

३५७ पछताना

३५८ पछानना
(पहचानना)

३५९ पछेरना

३६० षठाना, पठाउना

३६१ पडना

३६२ दड़ना, पढ़ना, पढ़ाना

३६३ पतियाना, पत्याना

३६४ पथाना

३६५ पथारना

३६६ पनपना

३६७ पनवाना
(पालन कराना)

३६८ पन्हाना
(पहनाना)

३६९ परचना
(जाँचना, बताना, समझना)

३७० परखना

३७१ परना
(पड़ना)

३७२ परवारना

३७३ परसना

३७४ परोसना

३७५ पलटना, पलठना
३७६ पलाना
(रोना, चिल्लाना, गाना)
३७७ पसरना
(फैलना), पसारना
३७८ पहरना, पहराना
३७९ पश्ताना
(पछताना)
३८० पहुचना, पहुचानना
३८१ पाना
३८२ पागना
(तर करना, डुबाना)
३८३ पाड़ना
(मराठी, नष्ट करना
उडाना, फेंकना)
३८४ पारना
(सकना)
३८५ पालना, पालाना
३८६ पिंगलना
३८७ पिंजना
३८८ पिगलना
(पिघलना)
३८९ पिछरना
३९० पिटना
३९१ पिनजना
(पैदा होना)
३९२ पिनाना, पिन्हाना
(पहनाना)
३९३ पीना
३९४ पीकरना
३९५ पीसना, पिसाना
३९६ पुकारना
३९७ पुटना
३९८ पुरना
(पूरा होना), पुराना
(पूरा करना)
३९९ पूचना, पूछना, पूछाना (प्रे.)
४०० पेखना
(देखना)
४०१ पेनना
(पहनना)
४०२ पेरना
(खेत बोना, हल चलाना)
४०३ पेहरना
(पहनना)
४०४ पैनना
४०५ पैसना
(प्रवेश करना)
४०६ पोंचना, पौंचना
(पहुँचना) पोंचाना
४०७ पोछना
४०८ पोतना
४०९ फँसाना
४१० फड़कना
(हरकत करना)
४११ फड़फड़ना, फड़फड़ाना
४१२ फबना
४१३ फर्माना
४१४ फहना
४१५ फाँकना
(दूर होना)
४१६ फाँदना
(लांघना)

४१७ फाँधना
४१८ फाँवना
४१९ फाटना
(फटना)
४२० फाड़ना, फोड़ना
४२१ फामना
(ज्ञात करना)
४२२ फिरना, फिराना
४२३ फिसलना
४२४ फुलना, फुलाना
४२५ फुसलाना
४२६ फूंकना, फ़ूकना
४२७ फूटना, फुटना
(ज़ाहिर होना)
४२८ फेंकना, फेकना
४२९ फेड़ना
(कर्ज उतारना, चुकता करना)
४३० फ़ैंटना
(पैठना)
४३१ फैरना
(पहरना, प्रवेश करना)
४३२ फैलना
४३३ बंटना, बंटाना
(प्रे.) बांटना
४३४ बंदना, बंधना, बांधना, बंधाना
४३५ बकना
४३६ बखानना
४३७ बचना
४३८ बजाना
४३९ बटना
४४० बड़बड़ाना
४४१ बढ़ना, बढ़ाना
४४२ बताना
४४३ बधारना
(कोंपल का बीज से निकालना)
४४४ बदलना, बदलाना
४४५ बनना, बनाना
४४६ बरजना
४४७ बरतना
४४८ बरलना, बरसाना
४४९ बलना
(जलना)
४५० बसना
४५१ बसीजना
४५२ बहकना
४५३ बहना
४५४ बहना
(वहन करना)
४५५ बहलाना
४५६ बांचना
(बचना)
४५७ बाचना
४५८ बाजना
(बजना)
४५९ बाटना
(बांटना)
४६० बाना, बाहना
(डालना)
४६१ बारना
(जलाना)
४६२ बिकना, बिकाना

४६३ बिकसना
(फूलना)
४६४ बिगड़ना
४६५ बिघाना
४६६ बिचकना
(डरना)
४६७ बिचारना
४६८ बिछाना
४६९ बिछुडना
४७० बिड़ाना
(नष्ट करना)
४७१ बिनजना, बिनजाना
(उत्पन्न करना)
४७२ बिरखाना
(बखेरना)
४७३ बिलकना, बिलखना
४७४ बिलगना
(गिड़गिड़ाना)
४७५ बिलोना
४७६ बिसरना, बिसारना
४७७ बिसाना
४७८ बिहाना
(बिताना)
४७९ बीराजना
४८० बुंगलना
४८१ बुझना, बुझाना
(समझना, समझाना)
४८२ बुनना
४८३ बुरना
४८४ बुलाना
४८५ बूछना
४८६ बूड़ना, बुड़ाना
४८७ बूजना
(बूझना)
४८८ बेचना, बेचाना
४८९ बेजारना
४९० बेड़ना
(घेर लेना)
४९१ वेदना
(निशाना जमाना)
४९२ बैठना, बिठाना, बिठाउना
४९३ बैसना (बैठना),
बिसलाना (प्रे०)
४९४ ब्याना
(पैदा करना)
४९५ ब्यापना
४९६ बोलना
४९७ बौराना
४९८ भगतना
(सहना)
४९९ भगना (खुश होना),
भागना, भगाना
५०० भजना
५०१ भड़कना
५०२ भरना, भराउना
५०३ भरमना
५०४ भहना
५०५ भानना
(तोड़ना)
५०६ भाना
५०७ भाजना, भागना

५०८ भारना
(जादू कर प्रभावित करना)
५०९ भालना
(डालना)
५१० भिगाना
५११ भिजाना
५१२ भिड़ना, भिड़ाना
५१३ भिनभिनाना
५१४ भिरकना (बुरकाना)
भिरकाना
५१५ भीजना
(भीगनां)
५१६ भूड़ना
(बूडना, डूबना)
५१७ भेजना, भिजाना
५१८ भेदना
(तोड़ना)
५१९ भोंदना
(ठगाना, फंसाना)
५२० भोकना
(भोंकना)
५२१ भोगना
५२२ भोड़ना, बुडना
(डूबना)
५२३ भोडना
(लौटना)
५२४ भोराना
(बहकाना, बहलाना)
५२५ मंगना
५२६ मंडना, मांडना, माडना
(व्यवस्थित रचना करना,
सजाना, मिलाना)

५२७ ड़ोड़ना, मरोड़ना
५२८ मतना
(मत देना)
५२९ मतरना
५३० मनना, मनाना
५३१ मरगोलना
(पक्षियों का कलरव करना,
झूमना, झूलना)
५३२ मरना, मारना, माराना
५३३ मसलना
५३४ महकना
५३५ माना
(समाना)
५३६ मानना
५३७ मिरोना
(अकड़कर चलना)
५३८ मिलना, मिलाना
९५३ मीलना
५४० मुंडना
५४१ मुमचना
(बन्द होना)
५४२ मुरड़ना
५४३ मुसकटना
(कपडा शरीर को लपेटना)
५४४ मूंचनां, मूचना
(बन्दकरना)
५४५ मूंडना
५४६ मूतना
५४७ मूसना
५४८ मोडना

५४९ मोलना
५५० मोहना
५५१ रंगना, रंगाना (प्रे.)
५५२ रखना, राखना, राकना
५५३ रगड़ना
५५४ रचना, रच्चना, रचाना
५५५ रहना, राहना
५५६ राजना
(राज्य करना)
५५७ रातना
(दीवांना होना)
५५८ rानना
(राज्य करना)
५५९ रावना
(चाहना)
५६० रिसना
५६१ रीजना, रीझना, रिझाना
५६२ रूसना
५६३ रोना
५६४ रोलना
५६५ रौंधना
५६६ लकना
(लखना), लखाना
५६७ लग़ड़ना
(रगड़ना)
५६८ लगना, लगाना, लगाउना
५६९ लगलाना
५७० लजाना
५७१ लटकना, लटकाना
५७२ लड़ना
(डसना)
५७३ लड़ना, लड़ाउना
५७४ लपेटना
५७५ लपेटेरना
५७६ लरजना
(काँपना)
५७७ लसना
५७८ लहना
(प्राप्तकरना)
५७९ लहलहाना
५८० लागना
५८१ लादना
५८२ लाना
५८३ लिखना, लिखाना
५८४ लिडना
(पैरों में लोटना)
५८५ लिपटना
५८६ लीपना, लेपना
५८७ लुंचना
५८८ लुबदाना, लुबधाना
५८९ लुभाना
५९० लूटना, लूटाना
५९१ लेखना, लेकना
(देखना)
५९२ लेटना, लिटाना
(प्रे.)
५९३ लैटना
५९४ लोचना
(चमकाना)
५९५ लोचना
(नोचना)
५९६ लोड़ना
(चाहना)

५९७ लोरना
(चाहना)
५९८ वटवटाना
(बड़बड़ाना)
५९९ वारना
(कुर्बान करना)
६०० संचना
६०१ संचरना
(फैलना, जारी होना)
६०२ संजरना
६०३ संपडना, सपड़ना
(प्राप्त होना)
६०४ सँवरना, सँवारना
६०५ संहारना, सहारना
६०६ सटना
(डालना, रखना, पटकना, अलग करना)
६०७ सड़ना
६०८ सताना
६०९ सनना
६१० समजना, समझना, समझाना
६११ समहालना
६१२ समाना
६१३ समेटना
६१४ सरकना
६१५ सरना
(पूरा होना)
६१६ सराना
६१७ सरजना
६१८ सलकना
(सरकना)
६१९ सलना
६२० सहलाना
६२१ सांदना
(जोड़ना)
६२२ साजना
६२३ साधना
६२४ सारना
६२५ सिंघारना
(आरास्त करना)
६२६ सिकना
(सीखना), सिकाना, सिखाना, सिकलाना
६२७ सीखना, सीखाना
६२८ सिदारना, सिधारना
६२९ सिरजना
६३० सुंगना, सुंगाना
६३१ सुखना, सुकना, सुकाउना
६३२ सुखकना
६३३ सुनना, सुनाना
६३४ सुचना
६३५ सुजना
६३६ सुधारना
६३७ सुपारना
६३८ सुमरना
६३९ सुलगाना
६४० सुहना, सुहाना
६४१ सुंगना
६४२ सूजना
(सूझना)
६४३ सूतना
(पीटना)
६४४ सूधना
(तलाश करना)

६४५ सेकना
६४६ सेबना
(सेवा करना)
६४७ सोंपना
६४८ सोना, सुलाना
६४९ सोचना
६५० सोधना
६५१ सोसना
(भोगना, सहना)
६५२ सोहना
६५३ सौंखना
(शपथ लेना)
६५४ सौंपना
६५५ शतालना
(गन्दा करना)
६५६ शर्माना
६५७ हूंकारना
(बुलाना)
६५८ हँसना
६५९ हकालना
६६० हगना
६६१ हटकना
(रोकना, ललकारना)
६६२ हड़बड़ाना
६६३ हदरना
(हिलना, कम्पित होना)
६६४ हरना
६६५ हलना
६६६ हांडना
(हिंडना, हींडना, झुमना)
६६७ हारना
६६८ हिलगना
६६९ हिलजना
६७० हिलना, हिलाना
६७१ हुंकारना
(ललकारना)
६७२ हेरना
(देखना)

□

सहायक ग्रन्थ

१ अलीगढ तारीखे अदब उर्दू
प्रोफेसर आले अहमद सरूर

२ इर्शादनामा
शेख बुरहानुद्दीन जानम
सं. प्रोफेसर मु. अ. सिद्दीकी

३ किताब नौरस
इब्रहीम आदिलशाह (द्वितीय)

४ कुत्बमुश्तरी
मुल्ला वजही
सं. विमला वाघ्रे
नसीरुद्दीन हाशमी

५ कुत्बमुश्तरी
सं. मौलवी अब्दुल हक

६ केरल चरित्रम् भाग १
केरल हिस्टरी एसोसियेशन, एरणाकुलम

७ ताड़पत्रीय हिन्दी ग्रन्थ (मलयालम लिपि में)
नं ६०७९ हस्तलिखित ग्रन्थागार केरल विश्वविद्यालय कार्यवट्टम
तिरुवनन्तपुरम

८ तारीखे अदब उर्दू
डॉ. जमील जालिबी

९ तारीखे फीरोज शाही
ज़ियाउद्दीन बर्नी
१० दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास
डॉ. श्रीराम शर्मा
११ दीवाने वजही (हस्तलिखित प्रति)
नं ५११ सालारजंग लाइब्रेरी, हैदराबाद
१२ नौसरहार
शेख अशरफ़
१३ बदर पडाप्पाट्टु
मोयिन कुट्टि वैद्यर
१४ बदरुल मुनीरुम हुस्नुल जमालुम्
मोयिन कुट्टि वैद्यर
१५ मकालात भाग १
मौलाना शीरानी
१६ मनलगन
काज़ी महमूद बहरी
१७ मसनवी कदमराव पदमराव
फखरुद्दीन निज़ामी
सं. डॉ. जमील जालिबी
१८ महत्तायमाप्पिल साहित्य पारम्पर्यम्
सी. एन अहमद मौलवी
अब्दुल करीम
१९ वजही के इशाए
जावेद विशिष्ट
२० सबरस
मुल्ला वजही
सं. प्रो. मु. सिद्धीकी
डॉ. राजकिशोर पाण्डेय
२१ हिन्दी साहित्य को हिन्दीतर प्रदेशों की देन
डॉ. मलिक मोहम्मद

नामानुक्रमणिका

□